विज्ञान के नये चरण

सम्बन्धित पुस्तकें

हरिभगवान्—दैनिक जीवन में विज्ञान (रसायन)

विज्ञान के नये चरण

[विज्ञान के आधुनिक सिद्धान्तों की रोचक व्याख्या]

ब्रह्मानन्द त्यागी, एम० एससी०
प्लानिंग रिसर्च एंड ऐक्शन इन्स्टीटयूट, लखनऊ

लखनऊ
अशोक प्रकाशन
१९५८

प्रथम संस्करण १९५८

मुद्रक
दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड
लखनऊ

भूमिका

गर्मी की किसी रात में अगर आप बाहर लेटे हों और नींद नहीं आ रही हो, तो आप तारे देखने लगेंगे। वियोग में प्रेयसी तारे गिन कर रात काटती है और तारों की दुनिया में पहुँचते ही सोचने लगती है कि आखिर इनकी भी कोई गिनती है? विश्व-ब्रह्माण्ड का कहीं किनारा भी है या नही? अगर दुनिया बनी तो कब बनी? क्या हम उसे नाप सकते हैं? वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को इन प्रश्नों ने बड़ा परेशान किया और बहुतों ने इसकी खोज में अपने को खपा दिया। आकाश की बात छोड़िये, ज़मीन पर आइये। सोने में क्या बात है कि वह चमकता है, लोहा सोने में क्यों नहीं बदला जा सकता—आखिर है तो वह भी पदार्थ ही। १, २, ३, ४, ५ को हम लिखते जायँ तो कहां तक लिख सकते हैं। क्या कोई ऐसी बड़ी-से-बड़ी संख्या है, जिससे बड़ी हम नहीं बता सकते? ५—५=० तो क्या अनन्त और शून्य एक ही हैं? $= \frac{२}{०} \infty$ या $\frac{२}{\infty} = ०$।

परमाणु के नाजुक और जटिल शरीर को भेद कर उसकी आन्तरिक रचना से परिचय हो सकता है और उसने हमारे सारे विश्वासों पर पानी फेर दिया। मात्रा और ऊर्जा में भेद ही मिटा दिया।

क्या देश को काल में बदल सकते हैं? क्या काल किसी वस्तु की स्थिति की चौथी घात है? हम कहते हैं कि हमारे दोस्त के घरका हमारे घर से पन्द्रह मिनट का रास्ता है तो इसके माने होते हैं कि हम दूरी को समय से नाप सकते हैं।

एटम बम और स्पुतनिक बम की चर्चा हम रात दिन सुनते हैं। हीरोशिमा शहर की राखें इस पीढ़ी में से बहुतों ने देखी भी होंगी। कल्याण और विनाश—साइंस के दोनों ही करिश्में जितने मनु की इस सन्तति ने देखे हैं कदाचित् ही किसी और ने देखे होंगे और शायद ही और कोई देखे—

परन्तु साइंस या विज्ञान का लक्ष्य क्या है? एटम बम क्या है? विश्व क्या है? इन बातों की जिज्ञासा कितनों के मन में उठी है? 'विज्ञान के नये चरण'

पुस्तक ने पहली बार हिन्दी में विज्ञान की विभिन्न दिशाओं का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।

साइंस के छात्रों और अध्यापकों को यदि विज्ञान की नयी बातों से अपने को परिचित रखना है और थोड़े समय में सरलता से बृहत् ज्ञान प्राप्त करना है तो यह पुस्तक एक उत्तम साधन प्रमाणित होगी।

विषय-सूची

अशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	अन्तिम	दो बार गुणा	एक बार गुणा
१४	ऊपर से ११ वीं	५ बार गुणा	४ बार गुणा
१५	नीचे से २री	$४^{ख}$	$\frac{१}{४ख}$
१६	ऊपर से ३री	$ब^{१}$	$ब^{५}$
१७	ऊपर से पहली	१·४	१·५
२०	ऊपर से ८ वीं	—	२० और ४४ के बीच में २२ होना चाहिए
७६	ऊपर से ९ वीं	A	अ
७६	ऊपर से ९ वीं	A′	अ′
११२	ऊपर से पहली	चल-ऊर्जा	गतिक-ऊर्जा
,,	ऊपर से १४ वीं	,,	,,
,,	ऊपर से २४ वीं	,,	,,
,,	ऊपर से २६ वीं	,,	,,
,,	ऊपर से २८ वीं	,,	,,

आमुख

एक देहाती जब रात में शहर में बिजली के बल्ब के चकाचौंध पैदा करनेवाले प्रकाश को देखता है तो वह अनायास ही पूछ बैठता है कि इसमें तेल कहाँ से आता है। लोग कहते हैं कि ये सब साइंस के करिश्मे हैं। ऐटम बम और उदजन बमों की चर्चा हम रात-दिन सुनते हैं। हीरोशिमा शहर की राखें इस पीढ़ी में से बहुतों ने देखी भी होंगी। कल्याण और विनाश—साइंस के दोनों ही करिश्मे जितने मनु की इस सन्तति ने देखे हैं, कदाचित् ही किसी और ने देखे हों—और शायद ही और कोई देखे। परन्तु साइंस या विज्ञान का लक्ष्य क्या है? ऐटम बम क्या है? हमारा विश्व क्या है? इस बात की जिज्ञासा कितनों के मनमें उठी है?

आज का साधारण वर्ग ही नहीं, अधिकांश शिक्षित वर्ग भी जब-जब आइन्स्टीन का नाम सुनता या पढ़ता तो इस वर्ग की बुद्धि जाने अनजाने इस नाम को परमाणु बम के पास ला पटकती है। इससे आगे इस वर्ग के लिए आइन्स्टीन एक अव्यक्त रहस्य है। आइन्स्टीन जीवन के अन्तिम दिनों में एक ऐसी समस्या में उलझे हुए थे जिसने उनको लगभग २५ वर्षों से परेशान कर रखा था। प्रकृति में दो मूल बल काम करते हैं; एक गुरुत्वाकर्षण बल और दूसरा विद्युत्-चुम्बकीय बल। ऐसी बात नहीं है कि इन दोनों बलों की पृथक्-पृथक् मूलता को हमने आदि काल से स्वीकार किया हो और आदि काल में केवल यही दो मूल बल माने जाते रहे हों, न यही कहने का तात्पर्य है कि

भविष्य में एकता की कोई आशा नहीं है। लगभग एक शताब्दी पूर्व यह माना जाता था कि विद्युतीय बल तथा चुम्बकीय बल सर्वथा पृथक् हैं और आमूल हैं। परन्तु फ़ैराडे अपने अनुसधानों के आधार पर इन दोनों बलों में मूलतः एकरूपता स्थापित करने में सफल हुआ। गत शताब्दी में फ़ैराडे ने यह सिद्ध किया था कि विद्युतीय धारा के सर्वत्र एक चुम्बकीय क्षेत्र होता है और कुछ विशेष परिस्थितियों के होने पर चुम्बकीय क्षेत्र विद्युत् धारा का सृजन करता है। आज का विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुंच गया है कि सभी बल, जैसे घर्षण बल, रासायनिक बल तथा पदार्थों के लचीलेपन का बल, मूलतः विद्युत्-चुम्बकीय हैं। इन सब बलों में पदार्थ होता है, और पदार्थ स्वयं परमाणुओं से बना है और परमाणु बने हैं विद्युत् कणों से।

विज्ञान प्रकृति के विभिन्न पहलुओं में एकरूपता स्थापित करने में तत्पर है। यह सच है कि आज के सारे प्रयत्न विफल हुए और जब-जब भी विज्ञान सफलता के निकट पहुंचता प्रतीत हुआ, प्रकृति रानी ने ऐसा शृंगार किया कि मानव उसको उस वेष में पहचान न सका और उसकी भविष्य की सारी आशा हिल उठी। फिर भी वह अपने मन में किसी एक दिन की आशा संजोये बैठा है—कदाचित् ऐसा दर्द है जिसकी दवा नहीं। साथ ही साथ ऐसा भी प्रतीत होता है कि कोई ऐसा कारण नहीं है कि प्रकृति में एकरूपता न हो। आज के वैज्ञानिक के लिए यह विषय प्रकृति की एक चुनौती है। आइन्स्टीन ने एक बार नहीं कई बार कहा था कि हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है, उन्होंने कहा था 'मुझे विश्वास नहीं होता कि ईश्वर दुनिया के साथ कुछ चाल खेल रहा है।' आइन्स्टीन को पूर्ण विश्वास था कि विश्व में एकता और तादात्म्य है। और उनका यह भी विश्वास था कि खोजी मानव एक न एक दिन इस तथ्य को जान ही लेगा। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनकी दृष्टि केवल परमाणु तक ही नहीं गई, अपितु वह असीम देश तथा काल की गहराइयों को भी भेद गई। यही वह समस्या थी जिसके समाधान में आइन्स्टीन अपने अन्तिम वर्षों में लगे रहे। इसका अंग्रेजी नाम है 'Unified Field Theory' जिसे हम सरल भाषा में 'एकता का सिद्धान्त' कह सकते हैं।

विश्व की रचना मात्रा तथा ऊर्जा द्वारा मानी जाती है और मात्रा तथा ऊर्जा का अस्तित्व भी पृथक् ही माना जाता था। आकाश में फेंका हुआ गोला वापस पृथ्वी पर आ जाता है और इसी प्रकार लुढ़कता हुआ गेंद एक स्थान पर जाकर रुक जाता है। ऐसा क्यों होता है?—मात्रा के कारण। गाड़ी खींचने के लिए अधिक बल की

आवश्यकता होती है और साइकिल खींचते समय कम। अब तक यह माना जाता था कि गाड़ी की मात्रा उसकी गति से निरपेक्ष है। ५० मन की गाड़ी की मात्रा में कोई अन्तर नहीं आना चाहिए चाहे वह स्थिर हो, चाहे ६० मील प्रति घंटे के वेग से या ६०,००० मील प्रति घंटे के वेग से दौड़ रही हो। परन्तु आज का विज्ञान इस मत से असहमत है। अब यह सिद्ध हो गया है कि मात्रा स्थिर नहीं रहती, अपितु वेग पर निर्भर है। यदि स्थिर अवस्था में किसी वस्तु की मात्रा $म_०$ है और वह फिर व वेग से गति में आये तो उस समय यदि उसकी मात्रा म है तो म और $म_०$ में निम्न सम्बन्ध होगा

$$म = \frac{म_०}{\sqrt{१ - व^2/स^2}}$$

स प्रकाश का वेग है।

यदि व का मान स की अपेक्षा अत्यधिक न्यून है तब म = $म_०$ अर्थात् गति का मात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। परन्तु जैसे-जैसे वह परिमित मात्रा वाली वस्तु का वेग प्रकाश के वेग के निकट पहुंचता है वैसे-वैसे उसकी मात्रा भी अपरिमितता की ओर अग्रसर होती है। मात्रा की वृद्धि का यह सिद्धान्त प्रयोगों द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। चूंकि गति के साथ मात्रा में वृद्धि होती है और गति ऊर्जा (चल-ऊर्जा) का दूसरा नाम है, यह मात्रा की वृद्धि ऊर्जा की वृद्धि से प्राप्त होती है अर्थात् ऊर्जा में मात्रा होती है। आइन्स्टीन मात्रा और ऊर्जा में निम्न सम्बन्ध भी स्थापित करने में सफल हुए:

$$ऊ = म\ स^2$$

यहाँ ऊ ऊर्जा है, म मात्रा तथा स प्रकाश का वेग। इस समीकरण का परमाणु बम में उपयोग सर्वविदित है। इस प्रकार यदि लगभग २ पाउंड कोयले की मात्रा को ऊर्जा में परिवर्तित किया जावे तो जानते हैं कितनी ऊर्जा निकलेगी? २५० खरब किलोवाट घंटों की विद्युत् मिलेगी।

हमारे बाह्य जगत् के ज्ञान की एक ओर की सीमाएं आइन्स्टीन के सापेक्ष-सिद्धान्त से निर्धारित हैं और दूसरी ओर की कण-सिद्धान्त से। सापेक्ष-सिद्धान्त हमें देश, काल तथा विश्व के आकार से परिचय कराता है और कण सिद्धान्त मात्रा तथा ऊर्जा की मूल इकाइयों को बताता है। परन्तु ये दो महान् सिद्धान्त सैद्धान्तिक दृष्टि से विभिन्न हैं। आइन्स्टीन का एकता का सिद्धान्त इन दोनों सिद्धान्तों में पारस्परिक

सम्बन्ध कराने में लगा है। प्रकृति की एकरूपता एवं अभिन्नता में विश्वास रखनेवाले आइन्स्टीन ने नियमों की एक ऐसी पद्धति का प्रतिपादन किया है जिसके क्षेत्र में परमाणु से लेकर बाह्य जगत् के सकल वस्तु-पिंड आ जाते हैं। इसके अनुसार विद्युत्-चुम्बकीय तथा गुरुत्वाकर्षण के नियम, दोनों ही एक सार्वभौमिक नियम के उपांग हैं। जिस प्रकार सापेक्ष-सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण बल को न मानकर उसे देश-काल की अविरतता का एक ज्यामितीय गुण मानता है उसी प्रकार एकता का सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत्-चुम्बकीय बलों को समान मानता है। हमारा कहने का अर्थ यह नहीं है कि गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत्-चुम्बकीय बल एकरूप हैं। यह उसी प्रकार असंगत है जैसे हम यदि कहें कि जल, बर्फ़ तथा भाप एकरूप हैं, यद्यपि ये तीनों एक ही पदार्थ की विभिन्न अवस्था हैं। इसी प्रकार 'एकता का सिद्धान्त' इसी बात पर जोर देता है कि गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत्-चुम्बकीय बल मूलतः एक ही हैं।

भविष्य जब अपनी कसौटी पर इस एकता के सिद्धान्त को खरा उतार देगा, तब हम इसके महत्त्व और परिणामों से परिचित होंगे। यदि इसके समीकरण कण-सिद्धान्त का प्रतिपादन भी कर सकें तो प्रकृति के बहुत से रहस्य अनायास ही खुल जावेंगे, एक नया ज्ञान होगा पदार्थ की रचना के विषय में, मूल कणों के आकार के विषय में, विकिरण के विषय में और इसी प्रकार दूसरे रहस्यों के विषयों में। फिर भी इस एकता के सिद्धान्त का उद्देश्य इतना ही नहीं है। मानव की उस अभिलाषा की पूर्ति इससे होती है जो वह आदि काल से अपने हृदय में संजोए बैठा रहा। आज तक के सारे अन्वेषणों का, सारे अध्ययन का एकमात्र उद्देश्य प्रकृति की विविधता में एकता स्थापित करना रहा है। विश्व के विभिन्न पदार्थों को ९२ श्रेणियों में रख देना इस ओर सबसे पहिला महत्त्वपूर्ण पग था और फिर इन तत्त्वों के निर्माता कुछ मूल कणों का पता लगाना दूसरा पग। इसी प्रकार विश्व में क्रियाशील बलों की विविधता को पहचान कर उन्हें एक बल, विद्युत्-चुम्बकीय बल, के विभिन्न रूप बतलाया गया। इसी प्रकार यह ज्ञात कर लिया गया कि सब प्रकार के विकिरणों, प्रकाश, ताप, एक्स-रेज आदिका कारण विद्युत्-चुम्बकीय तरंगे हैं और विकिरणों में भिन्नता का कारण इन तरंगों का परिमाण है। अन्ततोगत्वा सारे विश्व की रचना और क्रियाओं का कारण देश, काल, पदार्थ, ऊर्जा और गुरुत्वाकर्षण हैं। पदार्थ और ऊर्जा की एकरूपता हम पहिले ही दिखा चुके हैं और सापेक्ष सिद्धान्त में देश-काल की अविरतता अविभाज्य है। एकता का सिद्धान्त इसी एकता की ओर अग्रसर प्रयत्नों

का उत्कर्ष है। इसके अनुसार विश्व के सारे नक्षत्र, प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक नक्षत्रपुंज तथा प्रत्येक विद्युताणु देश-काल की अविरतता में सब समान हैं, सब एक हैं, एक ही नियम के अन्तर्गत हैं। बाहर से इतनी जटिल प्रतीत होनेवाली यह प्रकृति इतनी सरल होगी, यह जानकर किसे आश्चर्य न होगा। विद्युत्-चुम्बकीय तथा गुरुत्त्वाकर्षण बलोंका अन्तर, मात्रा और ऊर्जा में, तथा विद्युतीय आवेश, देश, काल का सब अन्तर इस एकता में आकर विलीन हो जाता है। सदैव से विज्ञान का यह उद्देश्य रहा है कि वह कम से कम स्वतः सिद्ध प्रमाणों को मानकर अधिक से अधिक तथ्यों का तार्किक रूप से विवेचन कर सके। एकता को ज्ञात करने का उद्देश्य न केवल वैज्ञानिकों का ही, अपितु उन सभी महान् विभूतियों का रहा है जिनमें ज्ञानोपार्जन की जिज्ञासा थी। अपनी-अपनी साधनाओं द्वारा सब के प्रयत्न इसी ओर अग्रसर थे, और हैं।

दर्शन का विज्ञान से गहरा सम्बन्ध रहा है; जब साइंस में परिवर्तन होता है तो उसकी प्रतिक्रिया उस काल के दर्शन पर होती है। आज का विज्ञान तो मुख्यतया दार्शनिक पुट के साथ है। आइन्स्टीन का सापेक्षता का सिद्धान्त और प्लांक का कण-सिद्धान्त दार्शनिक पृष्ठभूमियां लिये हैं। आज का विज्ञान इस प्रश्न को भी समझने का प्रयत्न करता है कि क्या हम स्वयं स्वतंत्र हैं? घटनाओं को बदलने की शक्ति हममें है या नहीं? क्या विश्व की मूल प्रकृति भौतिक है या मानसिक, या दोनों हैं? मन और पदार्थ में कौन अधिक आधारभूत है? क्या मन पदार्थ से बना है अथवा मनका सृजन पदार्थ से है? यह प्रश्न बहुत गम्भीर है। दर्शन और विज्ञान दोनों ही इसका उत्तर चाहते हैं।

जो थोड़ा बहुत विज्ञान जानते हैं, वे विज्ञान की शक्ति को असीम मानते हैं; जो विज्ञान नहीं पढ़े वे या तो इसके करिश्मों से आश्चर्यान्वित हैं अथवा इसको बेकार मानते हैं। बहुधा आपने सुना होगा कि भारत के डाक्टर लोग आयुर्वेद को विज्ञान नहीं मानते। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आयुर्वेद में आज भी वही पाँच मूल तत्त्व माने जाते हैं। साथ ही साथ यह भी दुर्भाग्य है कि पढ़े-लिखे लोग विज्ञान नहीं जानते। ठीक है, आज जल उदजन और आक्सीजन का यौगिक सिद्ध हो गया है; माना कि इनमें से एक भी तत्त्व नहीं है। परन्तु विज्ञान इसको तो कहते नहीं। यदि आज न्यूटन के गति-नियम, उसका गुरुत्त्वाकर्षण और उसके तरंग-सिद्धान्त कसौटी पर ठीक नहीं उतरते तो आप यह नहीं कह सकते कि न्यूटन वैज्ञानिक नहीं था, या वह सूर्य के पथ

का निरूपण नहीं कर सका था। यह अन्याय होगा। आज भी हमारा विज्ञान यह मानकर कि पृथ्वी स्थिर है, सूर्य चल रहा है, ग्रहणों का जिस सफलता के साथ निर्देशन कर रहा है, क्या वह सत्य नही हैं। वास्तव में ऐसे लोग विज्ञान को नहीं समझते ? और यह कहे कि ऐसे ही लोग विज्ञान के सब से बड़े शत्रु हैं तो अनुचित न होगा। हो सकता है आइन्स्टीन के आज के सारे सिद्धान्त भविष्य की कसौटी पर खरे न उतरें, परन्तु आइन्स्टीन सदैव अपने युग का प्रवर्तक रहेगा। न्यूटन का विज्ञान में आज भी वही सम्मान है जितना कभी पहिले था।

न्यूटन को किसी भी ऐसी घटना का ज्ञान नहीं था जहाँ उसके नियम न लागू होते हैं। चरक को किसी ऐसे रोग का ज्ञान नहीं था जिसका आयुर्वेद उपचार न कर सकता हो। चरक, न्यूटन, आइन्सटीन सब एक ही श्रेणी के आदमी हैं।

विज्ञान कोरा अनुमान है, अनुमान रहेगा। निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति विज्ञान में असम्भव है।

इस पुस्तिका को लिखने का मुख्य उद्देश्य यही रहा है। विज्ञान किसी वर्ग विशेष की बपौती नहीं है। उसका उद्देश्य जितना शिवं है उतना ही सुन्दरम् भी। जहां साइंस के करिश्मे हैं वहाँ उसका दर्शन भी है। आज हमारे देश में दर्शन की पहुंच जन-जन तक है; तो फिर विज्ञान उससे क्यों विमुख रहे। विद्यार्थी वर्ग इसको जटिलतम विषय मानता है; साधारण वर्ग इसके करिश्मों से अवाक् है और उच्च तथा दार्शनिक वर्ग इसे भौतिकवाद मानकर इसकी अवहेलना करता है। यह भाग्य की विडम्बना नहीं तो और क्या है ? जब तक विज्ञान हमारे जन-जीवन में नहीं आता, उसका केवल शिवं रूप ही हमारे सामने रहेगा सत्यं एवं सुन्दरं तो तभी आयेगा जब यह जीवन का दर्शन भी बन सकेगा।

भाषा की दृष्टि से पुस्तक को सरलतम किया गया है। विषयों का पूर्ण विवरण न देकर उनको केवल स्पर्श किया गया है। इस पुस्तक से पाठकों की यदि कुछ भी जिज्ञासा बढ़ सके तो लेखक का प्रयत्न सफल होगा।

—लेखक

लखनऊ
अक्टूबर २, १९५५

१

शून्य से अनन्त

१.१. 'जय जगदीश हरे', या 'ओ३म् नमो तत्सत्' अथवा 'अल्लाह हो अकबर' की प्रार्थना तो सुनी होगी। यदि आप धर्म या मज़हब को मानते हैं तो दैनिक नहीं तो कभी-कभी स्वयं भी प्रार्थना करते ही होंगे। आप भारतीय हैं न, और कम से कम हम भारतीयों की नस-नस में धर्म घुसा है; प्रार्थना चाहे करें या न करें, हम धर्म में विश्वास रखते हैं। बहुत से लोग घंटा बजा कर कीर्तन करते हैं। अभी कुछ दिन हुए, हमारे पड़ोस में अखण्ड कीर्तन चल रहा था—रात-रात भर रामायण का पाठ होता रहा—बच्चे-बूढ़े सभी रात भर जागते रहे। लाउड-स्पीकर की ध्वनि ने पड़ोसियों की नींद हराम कर दी—कानों में इतनी तीव्र ध्वनि आती थी जैसे ज़ोर से कह रही हो कि तुम भी कुछ पुण्य लूट लो—हाँ लूट लो। ऐसे कीर्तनों में पुण्य लुटता है। बड़े-बड़े धनी सेठ ही अक्सर कराते हैं, जो शुद्ध घी में डालडा मिला कर बेचते हैं। शायद बेचारे ठाकुर साहब को भी आजकल तो शुद्ध घी के दर्शन न होते होंगे। कुछ लोग मौन प्रार्थना करते हैं और कुछ एक पंक्ति में खड़े हो कर करते हैं। कोई कैलाश पर्वत पर बैठे भगवान् की चिरौरी करते हैं तो कोई सातवें आसमान पर बैठे ख़ुदा को हिफ़ाज़त के लिए पुकारते हैं। इष्ट देव की पूजा कोई कलियुग का वरदान नहीं है—आदि काल से चली आ रही है ये पूजा तो। १६वीं शताब्दी में एक पाइथागोरस नामक व्यक्ति था—साधारण-सा व्यक्तित्व था उसका। उसका भी अपना एक ख़ुदा था। उसकी भी एक

प्रार्थना थी। परन्तु कभी-कभी वह एक अजीब-सी प्रार्थना किया करता था। उसकी यह विचित्र प्रार्थना थी :—

'ओ संख्या देव, हमें वरदान दे—तूने सारे देवताओं एवं प्राणियों को जन्म दिया है; तूने ही सारी सृष्टि का सृजन किया है। ओ संख्या देव, तू एकता से आरम्भ हो कर पवित्र चार तक आता है। यहां सबका जन्म होता है—यहीं पर उसका जन्म होता है जो सर्वत्र है, शक्तिशाली है, अनन्त है, अनादि है। वह है दस।'

आप कहेंगे कि अवश्य इस आदमी का दिमाग़ ढीला रहा होगा। अरे इन संख्याओं, १, २, ३ आदि का भी कोई मूल्य है। यह तो हमारे मस्तिष्क की उपज है। मुझसे कहिये, मैं चाहे जितनी संख्या बना दूं—कितनी ही गिनवा लीजियेगा। और यदि मैंने कुछ कहा तो आप गिनने लगेंगे—हज़ार, लाख, करोड़—और आगे गिनते ही जावेंगे जब तक कि मैं न थक जाऊँ। परन्तु मेरे दोस्त, आज लाखों, करोड़ों की बात करना बहुत सरल है। एक ही आदमी ने एक ही साथ इन संख्याओं का अनुसन्धान नहीं किया। इनका तो अपना एक इतिहास है—एक दर्शन है।

आपको यदि गांवों में रहने का अवसर मिला हो तब आपको ज्ञात होगा कि ९० प्रतिशत मनुष्य १०० तक ठीक नहीं गिन पाते। बहुधा २० तक की गिनती जानते हैं। जानते हो, यदि उन्हें चालीस तक गिनना हो तो वे कैसे गिनेंगे? वे २० तक दो बार गिनेंगे और फिर कहेंगे दो बीसी। बहुत-से १० तक ही गिनती जानते हैं; ऐसे लोगोंको यदि आप २५ आम दे कर पूछें कि कितने हैं तो कहेंगे कि पांच पंजे; अर्थात् पांच बार पांच। आप कहेंगे ये तो गांव के मूर्ख हैं; शहर में आप किसी भी छोटे से १० बर्ष के बालक से पूछ लीजिये वह फ़ौरन् हज़ार लाख तक गिन देगा। मैं आप को एक कथा सुनाता हूं। प्राचीन काल में हंगरी देश में दो सामन्त रहते थे। इन दोनों को जुआ खेलने का बहुत शौक़ था। एक बार वे दोनों जंगल में शिकार की तलाश में जा रहे थे। बीच में ही रुक कर उन्होंने जुआ खेलने का निश्चय किया। एक ने कहा कि जुए की शर्त यह है कि वही जीतेगा जो सबसे बड़ी संख्या कहेगा। दूसरे ने कहा कि अच्छा मंज़ूर है। बहुत देर तक सोचने के बाद इस सामन्त ने सबसे बड़ी संख्या जो कही वह थी तीन। अब पहिले की बारी थी कि वह इससे बड़ी संख्या कहे। लगभग १५ मिनट तक दिमाग़ी उधेड़-बुन के पश्चात् उसने कहा कि दोस्त तुम्हीं जीते।

यह दशा थी उन धनाढ्यों की—जिनके पास संसार का सारा वैभव था, सारा ऐश्वर्य था। आज भी अफ़्रीका में ऐसी आदि जातियां हैं जिन्हें तीन से अधिक का ज्ञान

है ही नहीं। आज तो हम सब कुछ लिख सकते हैं। आज तो हम यह भी लिख सकते हैं कि विश्व में परमाणुओं की संख्या ३००, ००० शून्य के चि ह्न लगाते जाइये और लिखते रहिए।

आज हम १८४५ को केवल चार अंकों से लिख सकते हैं, परन्तु एक समय था कि आज के सबसे अधिक सभ्य कहलाने वाले देश के निवासी भी इसको चार अंकों में न लिख सकते थे। उनके पास दस के लिए अलग चिह्न, ५० के लिए अलग, १०० के लिए अलग और इसी प्रकार अलग-अलग अंक थे। सीज़र के समय में इस संख्या का रूप MMMMMMMMMDCCCXXXXV होता। और दस लाख लिखने के लिए तो उन्हें एक हज़ार बार M का चिह्न बनाना पड़ता था।

रोमन प्रणाली में (M जैसे संकेतों से संख्याओं को दर्शाना) शून्य के लिए कोई स्थान नहीं है। वास्तव में शून्य वे लिख ही नहीं सकते, दस लिख सकते हैं, बीस लिख सकते हैं (५० तथा और सब संख्याएं, यद्यपि इनमें भी परिश्रम बहुत करना पड़ता है) परन्तु शून्य वे नहीं लिख सकते। एक समय था जब शून्य का आविष्कार नहीं हुआ था। तब हम ३४२ को इस प्रकार लिखते थे ☰ ☷ = और ३०४२ को भी इसी प्रकार; इस ☰ ☷ = से ३४२, ३०४२, ३४०२, ३४२०, ३००४२ तथा ऐसी ही अनन्त संख्याएं बन सकती हैं। भारतीयों ने सबसे प्रथम इस चिह्न का आविष्कार किया था। हिन्दुओं से इसे अरब वालों ने सीखा, इसके पश्चात् इटली वालों ने तथा फिर जर्मनी वालों ने।

वास्तव में संख्याओं का आज का निरूपण बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ यदि यह कहें कि न केवल विज्ञान जगत् में अपितु दर्शन और ललित कलाओं के क्षेत्र में भी इसकी महिमा अपार है तो कोई अत्युक्ति न होगी। ला प्लास ने कहा था कि "भारत ने हमको सब संख्याओं को दस अंकों से व्यक्त करने की विचित्र प्रणाली दी; प्रत्येक चिह्न का एक स्थानीय मान होता है और एक निरपेक्ष मान। यह महत्त्वपूर्ण एवं गम्भीर धारणा आज हमें इतनी सरल मालूम होती है कि हम उसकी महत्ता को भूल से गये हैं। परन्तु इसकी सरलता एवं उपयोगिता के कारण ही अंकगणित सब आविष्कारों में अग्रगण्य है। और इस आविष्कार की महत्ता और सौन्दर्य की क़द्र तो हम उस समय करते हैं जब यह समझ लेते हैं कि भारत में इस प्रणाली का आविष्कार

उस समय हुआ जब आर्कमीडिज़ और आपोलिनस जैसे दार्शनिक भी जीवित थे।

गणना-पद्धति के इतिहास को पढ़ने वाला प्रत्येक विद्यार्थी इस स्थान-सिद्धान्त से विस्मित रह जाता होगा। किस दिमाग़ की खोज थी यह। कितना संलग्न रहा होगा वह आदमी जिसने इसका आविष्कार किया होगा। केवल वही नहीं, वहां का सारा वातावरण, सारी जाति कितनी गम्भीर, कितनी मननशील रही होगी। सहस्रों वर्षों के पश्चात् आखिर क्या आवश्यकता आ पड़ी थी जिसने इसका आविष्कार कराया? इस स्थान-सिद्धान्त का अर्थ है कि जब ये अंक किसी संख्या का निर्माण करते हैं तब उनके दो मान होते हैं—एक वह मान जो उस अंक का उन दस अंकों में है और एक वह जो उसका उस संख्या में होने के कारण है। ५२५ में ५ का अंक दो बार आया। दस अंकों में इसका स्थान पांचवां है और इस संख्या में इसके दो स्थान हैं: पहिले स्थान के कारण इसका मान ५ सौ है और तीसरे में केवल ५। वास्तव में ५२५ पांच सौ + बीस + पांच का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार ५७५५२ में पहिले पांच का स्थानीय मान पचास हज़ार दूसरे पांच का पांच सौ और तीसरे पांच का केवल पचास।

अब हम यह बताना चाहते हैं कि अंकगणित में किस प्रकार जोड़ने, घटाने तथा गुणा करने और भाग देने की क्रिया की ओर विकास हुआ। आरम्भ में जोड़ क्रिया तो पनप गई थी परन्तु गुणा करने की ये क्रियाएँ पूरी विकसित नहीं हुई थीं। जर्मनी के एक व्यापारी की कहानी इस प्रकार है। वह अपने पुत्र को उच्च वाणिज्य की शिक्षा देना चाहता था। एक दिन इसी सम्बन्ध में वह किसी प्रसिद्ध अध्यापक के पास गया और पूछा कि मैं अपने इस पुत्र को कहाँ अध्ययन हेतु भेजूं? अध्यापक ने इस व्यापारी से यह कहा कि यदि अंकगणित की शिक्षा केवल योग और घटाने तक ही देनी है तो जर्मनी के सभी विश्वविद्यालय ठीक हैं और यदि अंकगणित के गुणा और भाग से भी इसको परिचित कराना है तो इटली भेज दीजिये। संसार में वही एक ऐसा देश है जहाँ इतनी उच्च शिक्षा दी जा सकती है। ऐसा ही हुआ जैसा कि यदि आज कोई कहे कि विज्ञान में यदि कोई विशेष शिक्षा नहीं देनी हो तो भारत के किसी भी विश्वविद्यालय में भेज दीजिए, परन्तु यदि नाभि-विज्ञान में ही इसको शिक्षा दिलानी है तो अमेरिका भेजिए। हाँ, उस समय गुणा और भाग की क्रियाओं का लोगों को ज्ञान नहीं था। आगे हम गुणा करने की दो पद्धतियाँ देते हैं, एक प्राचीन और एक वर्त्तमान—

प्राचीन	(१३०० शताब्दी)	वर्तमान
४६ × १५		४६
४६ × २ = ९२		१५
४६ × ४ = ९२ × २ = १८४		२३०
४६ × ८ = १८४ × २ = ३६८		४६
४६ × १५ = ३६८ + १८४ + ९२ + ४६		६९०
= ६९०		

आज जब हम इस प्रणाली से गुणा करते हैं तो इसे इस प्रकार से लिख सकते हैं।

$$४६ \times (१० + ५) = ४६० + २३० = ६९०$$

और इसी प्रकार

$$२७ \quad ४७ = २७ \times (४० + ७)$$
$$= १०८० + १८९$$
$$= \underline{१२६९}$$

इस प्रणाली से गुणा करने में हम अंकों के स्थान के महत्त्व को पहिचानते हैं।

१.२. बड़ी संख्याएं. अब हम आपको संख्याओं के साथ कुछ खेलने और मनोरंजन करने का अवसर देंगे। आसमान के तारे गिन सकते हैं? आप कहेंगे नहीं। सारे विश्व में रेत के कण गिन सकते है? नहीं। परन्तु आर्कमीडिज ने तो कहा था कि वे गिने जा सकते हैं। और उसकी गणना के अनुसार इन कणों की संख्या १०००, है; यद्यपि आर्कमीडिज़ की विश्व की धारणा अशुद्ध थी। यदि इस संख्या को हम पुरानी रोमन पद्धति में लिखें तो कई पृष्ठ तो उसके लिखने में ही लग जावेंगे। अब हम इन बड़ी संख्याओं की एक कहानी सुनाते हैं।

भारत में एक राजा था। उसका मंत्री बहुत बुद्धिमान् गणितज्ञ था। इसी मंत्री ने शतरंज का खेल चलाया था। जब वह शतरंज को लेकर राजा के पास आया और उसने राजा को अपना खेल दिखाया तब राजा उसकी बुद्धिमत्ता पर मोहित हो गये और बोले, 'मंत्री, तुम्हें क्या दू, मुंह मांगा इनाम मांगो।' मंत्री बुद्धिमान् होने के साथ-साथ चालाक भी था। राजा के घुटनों पर गिरते हुए उसने कहा कि 'हुज़ूर,

में क्या मांगूं आप का दिया सब कुछ ही तो है, मुझे कुछ नहीं चाहिए।' परन्तु राजा तो बहुत खुश थे। न माने और आखिर मंत्री को इनाम मांगना ही पड़ा। उसने कहा कि 'हुजूर, इस शतरंज के पहिले खाने में गेहूं का एक दाना, दूसरे में दो, तीसरे में चार, चौथे में आठ और इसी प्रकार दानों की संख्या को दुगना करते जाइये और इन ६४ खानों को भर दीजिये।'

'मेरे मंत्री तुमने कुछ भी नहीं मांगा', यह कहकर राजा ने अपने नौकरों को गेहूं का एक बोरा लाने के लिए कह दिया।

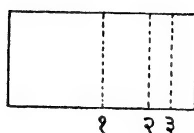
गेहूं आ गया और पहिले खाने में एक दाना रखा गया, दूसरे में दो, तीसरे में चार यों रखते-रखते २४वें खाने में ही बोरा समाप्त हो गया। और बोरे मंगाये गये, परन्तु खाने नहीं भरे। राजा का गोदाम खाली हो गया, मंडियाँ खाली हो गईं शहर के सब घरों से अनाज मंगा लिया गया, परन्तु शर्त पूरी नहीं हुई। राजा शरमा रहे थे, मंत्री मुस्करा रहा था। सारे हिन्दुस्तान का गेहूं भी वज़ीर की मांग पूरी नहीं कर सकता था। मंत्री की इच्छा पूरी करने के लिए तो १८,४४६,७४४,०७३,७०९,५५१,६१५ दानों की आवश्यकता होती है। इन दानों का वज़न लगभग १०,०००,०००,०००,०००, मन होता है। सारे संसार में भी कई हजार वर्षों में कहीं गेहूं का इतना उत्पादन न हो सकेगा।

दूसरी कहानी है बनारस के एक मन्दिर की। इस मन्दिर में सोने की तीन डंडियों में सोने की तश्तरियां लगी हुई हैं। ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना की तब एक डंडी पर ६४ छोटी बड़ी तश्तरियां इस प्रकार रखीं कि सबसे नीचे बड़ी, फिर छोटी, फिर छोटी और इसी प्रकार सबसे ऊपर सबसे छोटी तश्तरी थी। किसी भी छोटी तश्तरी के ऊपर बड़ी तश्तरी नहीं है। यह ब्रह्म का निवास है। मन्दिर का पुजारी रात-दिन बिना रुके उन तश्तरियों को उठा-उठाकर दूसरी डंडियों में इस प्रकार डालता है कि छोटी तश्तरी के ऊपर बड़ी न जाने पावे—यह दैव का नियम है। यदि सारी तश्तरियाँ उस डंडी से उठाकर दूसरी पर रख दी जावें, उस दिन प्रलय हो जावेगा।

यह तो हुई कथा। अब इसकी सत्यता को समझिए। पुजारी को कितने दिन लगेंगे इस काम में। मान लो पुजारी कभी विश्राम नहीं करता, रात-दिन लगा रहता है इसी काम में और एक तश्तरी को उठाकर रखने में मान लो, एक सेकंड लगता है। तो जानते हो कितने वर्ष लगेंगे बेचारे पुजारी को—५८,०००,०००,०००,०००,०००

वर्ष से अधिक, कम नहीं। और जानते हो कि वर्तमान विज्ञान के अनुसार हमारे विश्व की आयु २०,०००,०००,००० वर्ष है। हो जायेगा न प्रलय उस दिन !

इसी प्रकार 'कन कन जोरे मन जुरत' वाली कहावत है। एक काग़ज ले लीजिये— उसकी एक तह कीजिये, दूसरी कीजिये, तीसरी कीजिये और ६४ तह कर दीजिए। तह करने का अर्थ समझ लीजिए ; पहिले काग़ज को एक बार मोड़िए, फिर



चित्र १

इसी मुड़े हुए को एक बार यह हुई दूसरी तह ; फिर इसी दो तह वाले को एक बार— यह हुई तीसरी और इसी प्रकार ६४ तह कर लीजिये। कुछ अन्दाज लगा सकते हैं कि यह कितनी मोटी तह हो जावेगी। कहोगे अधिक से अधिक दो चार इंच—और अधिक बढ़े तो कहोगे एक फुट; इससे अधिक तो हो ही नहीं सकती। परन्तु मेरे मित्र, यदि हिसाब लगाओ तो मालूम होगा कि इसकी मोटाई इतनी होगी कि सूर्य तक पहुंचने का काम करेगी।

१.३. घात, लघु, वर्गमूल. हमने बड़ी-बड़ी संख्याएं बताईं—एक वहुत बड़ी संख्या बताई रेत के कणों की, गेहूं के दानों की और इस प्रकार विश्व की आयु की। परन्तु इतनी बड़ी संख्याओं को लिखने का एक और भी संक्षिप्त रूप है। देखो

$$१०^{२} = १००$$

इसको हम इस प्रकार पढ़ते हैं १० वर्ग १००। $१०^{२} = १००$ में संख्या २ का अर्थ ही महत्त्वपूर्ण है। यह संख्या इस बात की सूचक है कि १० को १० से ही कितनी बार गुणा किया गया है। यहाँ यह २ यह सूचित करता है कि १० को १० से दो बार गुणा किया गया है अर्थात् $१०^{२}$ का अर्थ हुआ $१० \times १० = १००$। इसी

प्रकार $१०^३ = १० \times १० \times १० = १०००, १०^५ = १० \times १० \times १० \times १० \times १० = १०००००$। $४^३$ का भी यही अर्थ है, $४^३ = ४ \times ४ \times ४ = ६४$, $३^५ = ३ \times ३ \times ३ \times ३ \times ३ = २४३$। अतः जब हम १००० लिखना चाहें तो उसे $१०^३$ भी लिख सकते हैं। $१०^५$ को हम पढ़ेंगें १० घात ५। इसी प्रकार अब हम विश्व के परमाणुओं की संख्या को ३×१०^{७४} लिख सकते हैं। $१०^५$ का अर्थ होता है कि अंक के आगे ५ बिन्दु लगाने से यह संख्या मिल जावेगी। इसी प्रकार ३×१०^{७४} का अर्थ है कि ३ के आगे ७४ बिन्दु लगाने से यह संख्या मिल जावेगी। गेहुओं के दानों की संख्या $२^{६४} - १$ है। कितना सरल हो गया संख्याओं का यह रूप।

$$\text{अब} \quad १०^५ = १००,०००$$

में १० को आधार कहते हैं, ५ को घात और १००,००० को संख्या। इसका यही तो अर्थ है कि १००,००० संख्या हमको १० को १० से ही ५ बार गुणा करने पर मिलेगी। इसको हम इस प्रकार भी लिख सकते हैं

$$\text{लघु } १००,००० = ५$$

परन्तु इस व्यंजना से हमको यह भान नहीं होता कि किस संख्या को गुणा करना है। अतः इसको हम इस प्रकार लिख सकते हैं:—

$$\text{लघु}_{१०} १००,००० = ५$$

इसमें नीचे लिखा हुआ १० आधार को व्यक्त करता है। तो अब हम $५^३ = १२५$ को इस प्रकार लिख सकते हैं :

$$\text{लघु}_{५} १२५ = ३$$

यहाँ पर आधार ५ है। साधारणतया आधार १० ही होता है।

इस अभिव्यंजना	$५^३ = १२५$
या	$६^२ = ३६$

में ५ का १२५ घन तथा ६ का ३६ वर्ग है; और उल्टे चलें तो कहेंगे कि १२५ का ५ घनमूल तथा ३६ का ६ वर्गमूल है। अंकगणित में इन मूलों को ज्ञात करने के नियम हैं। परन्तु उससे हम केवल वर्गमूल ही निकाल सकते है। आगे का मूल

निकालना कठिन है; यों चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं। हम आदि से चलें और सबके वर्ग लिख जावें; परन्तु मूल फिर भी नहीं निकाल सकते। लघु द्वारा ही इनका मूल निकालना सम्भव है। यहाँ पर लघु के कुछ गुण बतला देना आवश्यक समझते हैं।

यदि क × ख = ग

तो $लघु_{१०}$ क* + $लघु_{१०}$ ख = $लघु_{१०}$ ग ... ... (१)

और यदि क/ख = ग

तो $लघु_{१०}$ क − $लघु_{१०}$ ख = $लघु_{१०}$ ग ... ... (२)

और यदि $क^{ख}$ = ग

तब ख $लघु_{१०}$ क = $लघु_{१०}$ ग ... ... (३)

तथा $लघु_{क}$ क = १ ... ... (४)

और ख $लघु_{क}$ क = $लघु_{क}$ ग

या ख = $लघु_{क}$ ग

अब $४^{२}$ = १६ और $४^{\frac{१}{२}}$ = २। जब घात पूर्ण संख्या न हो कर भिन्न होती हैं तब उसका अर्थ होता है मूल निकालना। $४^{\frac{१}{२}}$ का अर्थ है वह संख्या जिसका वर्ग ४ है। इसी प्रकार $४^{\frac{१}{३}}$ का अर्थ है वह संख्या जिसका घन ४ है। अर्थात् यदि वह संख्या क है तो प्रथम दशा में

$$क^{२} = ४$$

और दूसरी दशा में

$$क^{३} = ४$$

इसी प्रकार यदि हम कहें कि $४^{ख}$ का मान ज्ञात करो। मान लो वह संख्या 'अ' है तब अ $\frac{१}{ख}$ = ४ (ख पूर्ण संख्या नहीं है)। इनको लिखने का एक और ढंग भी है। $४^{\frac{१}{२}}$ को हम $\sqrt{४}$ लिख सकते हैं, $४^{\frac{१}{३}}$ को $\sqrt[३]{४}$ तथा इसी प्रकार $४^{ख}$ को $\sqrt[ख]{४}$

---

* जब आधार १० होता है तब उसे दिखाने की आवश्यकता नहीं होती।

अब यदि आपको १०० का पांचवां मूल निकालना है तो क्या करेंगे? मान लीजिए कि यह मूल 'ब' है तब

$$ब^{५} = १००$$

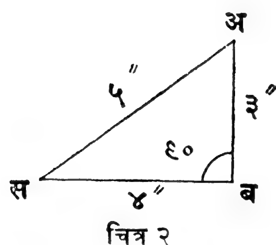
$$\therefore ५\ लघु_{१०}ब = लघु_{१०}\ १००$$

$$= २$$

$$\therefore लघु_{१०}ब = \frac{२}{५}$$

अब हम तालिका में दी गई संख्याओं से 'ब' का मान निकाल सकते हैं।

१.४. पाइथागोरस का प्रमेय. पाइथागोरस का विवरण पहिले भी आ चुका है। ज्यामिति में संख्याओं के इस पुजारी ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रमेय को सिद्ध किया है। नीचे का त्रिभुज देखो :



चित्र २

यह एक समकोण त्रिभुज है। सबसे पहिले पाइथागोरस ने यह सिद्ध किया कि ऐसे त्रिभुज में समकोण बनाने वाली भुजाओं के वर्ग का योग समकोण के सम्मुख वाली भुजा के वर्ग के समान होता है। इस त्रिभुज में

$$अब^{२} + बस^{२} = अस^{२}$$

इसका विलोम भी सदैव सत्य है, अर्थात् यदि $अब^{२} + बस^{२} = अस^{२}$ तो कोण ब समकोण होगा। हिन्दुओं को यह तथ्य शायद पाइथागोरस से भी पूर्व मालूम था। इससे वे समकोण बनाया करते थे। २४ इंच रस्सी पर २ जगह निशान बनाइए —पहिला ६ इंच दूर और दूसरा इससे आगे ८ इंच दूर। अब इन तीनों म जो त्रिभज बनेगा वह समकोण त्रिभुज होगा।

१·४. अंकों की श्रेणियाँ : निम्न श्रेणी को देखिए :

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०,..............

इसमें पहली संख्या ऐसी है जो २ से नहीं कटती, तीसरी भी ऐसी है और पाँचवी भी। इसके विपरीत दूसरी, चौथी, छठी तथा इसी प्रकार आगे ऐसी संख्याएं हैं जो २ से पूरी विभाजित हो जाती हैं। इस दृष्टिकोण से हम उनको निम्न रूप देते हैं :—

(अ) १, ३, ५, ७, ९, ११, १३,...........
(ब) २, ४, ६, ८, १०, १२, १४,...........

पहली श्रेणी की संख्याओं को हम विषम (odd) तथा दूसरी श्रेणी की संख्याओं को सम (even) संख्याएं कहते हैं।

Prime Number : संख्याएं दो प्रकार की होती हैं :—एक वे जो दूसरी छोटी संख्याओं का गुणनफल होती है। जैसे १२ तीन और चार का, या दो और छै का गुणनफल है। परन्तु ११ किसी ऐसी संख्या का गुणनफल नहीं है। ऐसी संख्याओं को जो किसी दूसरी संख्याओं का गुणनफल नहीं होतीं Prime संख्याएं कहते हैं।

सम और विषम संख्याएं तो अनन्त है; एक के उपरान्त एक लिखते चले जाइए। परन्तु क्या Prime संख्याएं भी अनन्त है ? या कोई ऐसी संख्या है जिसके आगे की सब संख्याएं दूसरी संख्याओं का गुणनफल हैं। यूक्लिड ने इस ओर सबसे पहिले ध्यान दिया था। उसने सिद्ध किया था कि ऐसी संख्याएं अनन्त हैं। बड़ी सरलता से यूक्लिड ने यह सिद्ध किया था। मान लो कि 'स' सबसे बड़ी Prime संख्या है। जितनी भी 'स' से कम Prime संख्याएं हों उनका गुणनफल लीजिए और उसमें १ जोड़ दीजिए :

'ल' $= (१ \times २ \times ३ \times ५ \times ७ \times ११ \times १३ \times \ldots\ldots \times स) + १$

यह जो 'ल' संख्या आई सो 'स' से बड़ी और स्वयं Prime है। Prime इस कारण कि 'स' तक की Prime संख्याओं में से किसी भी संख्या से भाग देने पर सदैव १ बचेगा। इस प्रकार 'स' सबसे बड़ी Prime संख्या नहीं हो सकती।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई ऐसा नियम है जिससे क्रमानुसार सारी ऐसी संख्याएं जानी जा सकें ? विषम और सम संख्याओं के लिये तो अगले पृष्ठ पर दो बड़े सरल नियम हैं।

(अ) विषम संख्या = २क + १
(ब) सम संख्या = २क
जहाँ 'क' कोई भी पूर्ण संख्या है

इन संख्याओं को जानने के लिये भी बहुत प्रयत्न किये गये। यूनानी गणितज्ञ ने इस ओर सबसे पहिला पग उठाया। उसने १०० तक की संख्याओं में से वह सब संख्याएं निकाल दीं जो २, ३, ५, ७, ११ तथा इसी प्रकार इन Prime संख्याओं से विभाजित हो सकती थीं। जो शेष संख्याएं बचीं वे सब Prime थीं—ये २६ हैं:—

१, २, ३, ५, ७, ११, १३, १७, १९, २३, २९, ३१, ३७, ४१, ४३, ४७, ५३, ५९, ६१, ६७, ७१, ७३, ७९, ८३, ८९ तथा ९७।

और इस प्रकार कई खरब संख्याओं में से Prime संख्याओं को चुन लिया गया है। परन्तु सरलता तो तब होगी जब हमें विषम और सम संख्याओं की ही भांति इनके लिये भी कोई सूत्र मिल सके। इस सूत्र की खोज शताब्दियों से हो रही है, परन्तु आज तक किसी ऐसे सूत्र का पता न लग सका। सन् १६४०ई० में फ़्रांसीसी गणितज्ञ फ़र्मा ने एक सूत्र दिया था और कहा था कि इस सूत्र से सभी Prime संख्याएं निकलेंगी। उसका सूत्र था

$$\text{Prime संख्या} = \left(२^{(२^{क})}\right) + १$$

जहाँ 'क' पूर्ण संख्या है। इस सूत्र से

$२^{२} + १ = ५$	क = १
$२^{४} + १ = १७$	क = २
$२^{८} + १ = २५७$	क = ३
$२^{१६} + १ = ६५५३७$	क = ४

प्रत्येक एक Prime संख्या है। परन्तु बाद में जर्मन गणितज्ञ आइलर ने इसको अशुद्ध सिद्ध किया और बताया कि क = १६ में फ़र्मा के सूत्र से ४२९४९६७ २९७ संख्या मिलती है। यह Prime नहीं है अपितु ६७००४१७ तथा ६४१ का गुणनफल है।

एक दूसरा सूत्र निम्नलिखित है

$$क^{२} - क + ४१$$

जहाँ क वही पूर्ण संख्या है।

परन्तु इसमें जब तक क ४० या इससे कम रहता है तब तक तो Prime संख्या मिलती है, इसके आगे यह असफल होता है। यथा

$$(४१)^२ - ४१ + ४१ = ४१^२$$

जो पूर्ण वर्ग है और Prime संख्या नही है।

एक दूसरा सूत्र है

$$क^२ - ७९क + १६०१$$

यह सूत्र भी क = ८० के लिये व्यर्थ हो जाता है।

आज तक कोई भी सूत्र ऐसा न मिल सका जिससे सारी Prime संख्याएं जानी जा सकें।

पूर्ण संख्याएं. क्रिश्चियन धर्म में विश्व रचना के ६ दिन माने जाते हैं। इस ६ की बड़ी महत्ता है। कुछ संख्याएं ऐसी होती हैं कि उनके गुणन खण्डों का योग भी उस संख्या के समान होता है। हम नीचे कुछ संख्याएं देते हैं और साथ-साथ उनके गुणन खण्ड भी

संख्या	विभिन्न गुणनखण्ड	गुणनखण्डोंका योग
१	१	१
२	१	१
३	१	१
४	१, २	३
५	१	१
६	१, २, ३	६
१४	१, २, ७	१०
२८	१, २, ४, ७, १४	२८

स्पष्ट है कि इस तालिका में केवल ६ और २८ ही ऐसी संख्याए है जिनके गुणनखण्डों का योग उनके समान है। ऐसी संख्याओं को पूर्ण कहते हैं। हां, तो ईसाई धर्म में विश्व-रचना में ६ दिन लगे है और चन्द्रमा को एक चक्कर लगाने में २८ दिन लगते है।

इन्हीं पूर्ण संख्याओं के कारण सेन्ट आगस्टाइन ने यह कहा था कि 'ईश्वर ने विश्व की रचना ६ दिन में की—इस कारण ६ पूर्ण संख्या है'—ऐसी बात नहीं है, अपितु,

चूंकि ६ पूर्ण संख्या है, इसलिए ईश्वर ने विश्व की रचना ६ दिनमें की। यह संख्या सदैव पूर्ण रहेगी, चाहे विश्व की सृष्टि हो या विनाश।

प्रिय संख्याएं. पाइथागोरस से जब यह पूछा गया कि मित्र कैसा होना चाहिए तो उसने उत्तर दिया कि ठीक अपना जैसा—दूसरा अपनापन। जब उससे फिर पूछा गया कि उदाहरण दीजिए तो उसने कहा कि जैसे २२० और २८४। वास्तव में २२० के गुणनखण्डों का योग २८४ और २८४ के गुणनखण्डों का योग २२० है।

संख्या	विभिन्न गुणनखण्ड	गुणनखण्डों का योग
२२० =	(१, २, ४, ५, १०, ११, २०, ४४, ५५, ११०)	= २८४
२८४ =	(१, २, ४, ७१, १४२)	= २२०

आज तक यह निर्णय नहीं हो पाया कि क्या ऐसी संख्याएं अनन्त है, यद्यपि सैकड़ों ऐसी संख्याएं मालूम हो चुकी हैं। हिन्दुओं को बहुत पहले इन संख्याओं का ज्ञान था।

हिब्रू तथा यूनानी भाषा में एक प्रणाली है जिसमें प्रत्येक अक्षर का संयोग एक अंक से हो जाता था। इस प्रकार करने से एक नामका भाषामें एक स्थान बन जाता है। उसी समयमें एक राजकुमार था जिसके नाम की संख्या २८४ थी। वह सारी ज़िन्दगी ऐसी राजकुमारी के पाने में लगा रहा जिसके नाम की संख्या २२० हो, जिसमें वह सुखद जीवन व्यतीत कर दैवीय वरदान का भागी बन सके।

अंक-पूजा. पाइथागोरस ऐसा पहिला इंसान था जो अंकों की पूजा किया करता था। उसकी इस पूजा का उल्लेख हम पहिले ही कर चुके हैं। कुछ अंकों की विशेष पूजा होती है, जिसके ये कारण है:

अंक　　　　पूजा का कारण

१. चूंकि यह अपरिवर्तनीय है।

२. यह मतको अभिव्यक्त करता है।

४. न्यायकी अभिव्यक्ति करता है; चूंकि यह पहली वर्गसंख्या है और समान संख्याओं का गुणनफल है।

५. विवाह—चूंकि यह सबसे पहिले नर एवं मादा संख्याओं का योग है।

६. पूर्ण संख्या।

७. हिब्रू और क्रिश्चियन नीतिशास्त्र (Theology) में बहुत पवित्र माना जाता है। उनके यहां सात पाप हैं, सात गुण हैं तथा ईश्वर की सात आत्माएं है।

इसी प्रकार चीन के पुराणों में भी यही पूजा पाई जाती है। विषम संख्याएं श्वेत, दिन, ताप, सूर्य तथा अग्नि आदि की और सम संख्याएं काला, रात, शीत, पदार्थ, जल तथा पृथ्वी की परिचायक हैं

१.५. **काल्पनिक संख्याएं.** संख्याओं का वर्ग करना सीखा, उनका वर्गमूल निकालना भी सीखा। ४ का वर्ग १६ होता है ५ का २५ तथा इसी प्रकार १६ का वर्गमूल ४ होता है और २५ का ५। परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि −१६ का वर्गमूल क्या होता है? हम जानते हैं कि (−४) (−४) = १६। अतः १६ का वर्गमूल ४ या (−४) है; परन्तु −१६ का क्या है? हिन्दू गणितज्ञ भास्कर का नाम तो सुना ही होगा। १२वी शताब्दी का गणितज्ञ था यह। उसको इन वर्ग और वर्गमूलोंका ज्ञान था। उसने कहा था कि धनात्मक राशियों का वर्ग तो धनात्मक होता ही है, ऋणात्मक राशियोंका वर्ग भी धनात्मक होता है। अतएव ऋणात्मक राशियां किसी भी राशि का वर्ग नही हो सकती। परन्तु गणितज्ञ बड़े हठीले होते है। बारबार जब उनके सामने यह समस्या आई तो उन्होंने उसका समाधान निकाल ही लिया।

कारडन नाम का एक इटैलियन गणितज्ञ था। उसने १० के दो भाग किये; उनका योग १० रहा और उनका गुणनफल ४० हो गया। उसके ये दो भाग गणित की असम्भव व्यञ्जनाएं थी। ये थीं $५+\sqrt{-१५}$ तथा $५-\sqrt{-१५}$।

$$(५-\sqrt{-१५})+(५+\sqrt{-१५})=१०$$
$$(५-\sqrt{-१५})\times(५+\sqrt{-१५})$$
$$=२५+५\sqrt{-१५}-५\sqrt{-१५}+१५$$
$$=४०$$

कारडन ने तो इस अभिव्यञ्जना को अर्थहीन तथा असम्भव बताया था। परन्तु बाद के गणितज्ञों ने इसे असम्भव नहीं माना। इन राशियों का उपयोग हुआ, यद्यपि वह बड़ी सावधानी से किया गया। आइलर (Euler) ने इन राशियों का बहुत उपयोग किया —यद्यपि उसकी कुछ टिप्पणिया थीं। वह कहा करता था कि $\sqrt{-१}$ या $\sqrt{-५}$ जैसी सब संख्याएं काल्पनिक हैं। इन राशियों के विषय में हम यह कह सकते है कि न तो ये शून्य हैं, न शून्य से अधिक और न कम। यही इनके काल्पनिक होनेका प्रमाण है।

आज तो गणित में इन काल्पनिक संख्याओं का बोलबाला है। वास्तवमें ये संख्याओं की छायामात्र हैं; जितनी संख्याएं हैं उतनी ही छाया। अब हम $\sqrt{-१}$

को 'क' से व्यक्त करते हैं। अब हम $\sqrt{-९}$ को लिखेंगे $\sqrt{९} \times \sqrt{-१} = ३क$।

१.६. संख्याएं क्या हैं. आज स्कूल का प्रत्येक बच्चा इस बात को जानता है कि दो और दो चार होते हैं। परन्तु एक प्रश्न है कि क्या विश्व का स्रष्टा किसी ऐसी दुनिया का निर्माण कर सकता है जहां दो और दो चार न होते हों? इसके पहिले कि हम ईश्वर की शक्ति को जान सकें, हमें यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि 'दो' क्या है। क्या ये वस्तुएं हैं जिनका भौतिक संसार में अस्तित्व है अथवा केवल दिमागी कीड़े? क्या वे संख्याएं हैं अथवा वस्तुएं और यदि वस्तुएं हैं तो उनकी मूल प्रकृति क्या है?

यदि दो और दो से हमारा तात्पर्य केवल संख्याओं से ही है तब तो हम केवल यही कह सकते हैं कि यह गणना-प्रणाली है और इस प्रणाली में दो और दो को कोई संख्या होना ही है। आप ऐसी संख्या को चाहे कुछ भी क्यों न कहें। चाहे चार कहिए, फ़ोर कहिए चाहे कात्र। परन्तु यदि इनका तात्पर्य भौतिक वस्तुओं से है तब अवस्था बदल जाती है। तब दो और दो चार कहने का अर्थ यह होता है कि यदि आपके पास दो पैसे हैं और दो पैसे आपको और मिल गये तो आपके पास चार पैसे हो जायेंगे। इसी प्रकार दूसरी भौतिक वस्तुओं के बारे में भी यही सत्य है। यहां पर हमको पैसों की प्रकृति का ज्ञान है। दो पैसे आपके पास थे, दो और मिले। इससे पैसों की प्रकृति पर कोई अन्तर नहीं पड़ा। परन्तु यदि हम कहें कि पत्ते पर ओस की एक बूंद पड़ी थी, एक और बूंद उसमें आकर मिल गई; तो कितनी बूंदें हो गई? दो। झूठ। बूंद तो फिर एक ही रह गई; या हो सकता है कि दो बूंदों के कारण ओस बह गई हो और एक बूंद भी न रही हो। इलाहाबाद में गंगा आती है; यमुना उसमें आकर मिलती है। काशी में कितनी नदी हैं? दो क्यों नहीं हो जाती?

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि हम गिनती नहीं गिन रहे हैं तो यह आवश्यक नहीं कि दो और दो हमेशा चार ही हों। गणित की क्रियाओं में यदि वस्तुओं की आकृति तथा मूल प्रकृति में परिवर्तन न हो तब तो $२ + २ = ४$ होते हैं; परन्तु यदि वस्तुओं की इस मूल प्रकृति का हमको ज्ञान न हो तब हम यह नहीं कह सकते कि $२ + २$ क्या है।

एक दूसरा उदाहरण हम आप को देंगे। हम यह जानते हैं कि $३ \times ४ = ४ \times ३ = १२$। हर बच्चा इस बात को जानता है। परन्तु आज का गणित इसको सर्वत्र सत्य नहीं मानता। परमाणु का अन्तर ईश्वर ने कुछ इस प्रकार बनाया है कि उसमें ३×४ तथा ४×३ के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं।

वास्तवमें 'संख्या २ और दो गुना' कहने में अर्थ की भिन्नता है। आगे चलकर हम बतलायेंगे कि यह कथन कि इस पेन्सिल की लम्बाई ८ इंच है सर्वदा सत्य नहीं है; जब कि यह कथन कि इस पेन्सिल की लम्बाई दूसरी पेन्सिल से दो गुनी है, सर्वथा सत्य है, यदि उनकी एक जाति हो। गणितज्ञ और दार्शनिक में यहां पर बहुत अन्तर हो जाता है। गणितज्ञ वस्तुओं के परिमाण का अंकन अनुपात में करता है जब कि दार्शनिक उनका निरपेक्ष परिमाण बताने का असफल प्रयास करता है।

१.७. अनन्त. अब तक हम संख्याओं के कुछ दार्शनिक पहलू और कुछ उनके व्यावहारिक पहलू पर विचार कर चुके है। अब हम यह जानना चाहेंगे कि क्या कोई ऐसी भी संख्या है जिससे बड़ी कोई संख्या न हो; ठीक उसी तरह जैसे हम यह जानना चाहें कि संसार में सबसे लम्बे आदमी की क्या उंचाई है? क्या आप इसी प्रकार बता सकते हैं कि संख्याओं में कौन बड़ी संख्या है? शतरंज के खेलवाले गेहूँ के दानों की संख्या बहुत बड़ी सही, परन्तु उसकी गणना संभव तो है। आकाश के तारे बहुत सही, परन्तु उनका अंकन असम्भव तो नहीं है। जब परमाणुओं की संख्या की गणना सम्भव है, तब क्या वह अनन्त है? परन्तु संख्याओं की संख्या अनन्त है।

यदि दो कुर्सियां हों और दो आदमी हों तो एक कुर्सी पर एक आदमी बैठ सकता है और इस प्रकार न तो एक कुर्सी खाली रहेगी और न एक भी आदमी को खड़ा रहना पड़ेगा। ३ आदमी हों और २ कुर्सियां हों तो एक आदमी को खड़ा रहना पड़ेगा। दो कुर्सियां एक प्रकार की वस्तुओं का संग्रह है और दो आदमी दूसरी प्रकार की वस्तुओं का संग्रह। ये दो संग्रह हुए। जब दो कुर्सियाँ थीं और दो आदमी थे तो जोड़ी ठीक मिल गई थी और जब केवल दो कुर्सियां थीं और तीन आदमी तो जोड़ी बिछुड़ गई थी। जब दो संग्रहों में यह जोड़ी मिल जाती है तब हम कहते हैं कि दोनों संग्रह समान हैं। इस प्रकार की जोड़ी मिलाने से बहुत बड़े काम निकलते हैं। अफ़्रीका की होटिनटोह जाति की तरह जब हमारे पास दो संग्रह ऐसे होते हैं कि उनमें यह बताना कठिन पड़ जाता है कि कौन-सा बड़ा है तो यही हम भी करते हैं।

देखिए संख्याओं में दो संग्रह हैं हमारे पास:

१. विषम संख्या संग्रह : १, ३, ५, ७,······
२. सम संख्या संग्रह : २, ४, ६, ८,······

बता सकते हो कौन-सा बड़ा है? बिल्कुल नहीं। अब जरा जोड़ी मिलाकर देखिए :—

१	३	५	७	९	११
↓	↓	↓	↓	↓	↓
२	४	६	८	१०	१२

अब स्पष्ट है कि प्रत्येक विषम संख्या के लिये एक सम संख्या है। अतः इन दो संग्रहों में कोई भी दूसरे से बड़ा नहीं है। इसी प्रकार ये दो संग्रह भी

१. सब संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०····
२. सम संख्या	२	४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०····

समान हैं। बड़ा अजीब-सा लगता है यह। सम संख्याओं का यह संग्रह सम्पूर्ण संख्याओं का ही भाग है। आप कहेंगे भारत के सारे मनुष्यों का संग्रह क्या विश्व के सारे मनुष्यों के संग्रह के समान हो सकता है। कदापि नहीं। ठीक है आपका कथन। परन्तु मैं तो यह कहता हूं कि आप मेरे तर्क में त्रुटि निकालिए।

अब हम बताते हैं कि इस विरोधाभास का क्या कारण है। इससे पहिले भी हम यह बतला चुके हैं कि जब हम गणित की क्रियाएं करते हैं तो हमें यह न भूल जाना चाहिए कि जिन वस्तुओं पर ये क्रियाएं हो रही हैं उनकी प्रकृति क्रिया-काल में बदल तो नहीं जाती। एक बूद और एक बूंद मिलकर दो बूंद नहीं बना सकतीं। उसी प्रकार संख्याओं का कोई अन्त नहीं है। वे अनन्त हैं और इस अनन्तता का गुण संख्याओं की भांति सरल नहीं है। वास्तवमें अनन्त कोई संख्या नहीं है; यह तो केवल एक क्रिया का प्रतीक है। अनन्त का चिह्न है ∞। सम्पूर्ण संख्याएं अनन्त हैं; विषम संख्याएं अनन्त हैं; सम संख्याएं अनन्त हैं। अनन्त संख्याओं से अनन्त विषम संख्याओं को निकाल दीजिए; अनन्त सम संख्याएं बच जावेंगी। अर्थात्

$$\infty - \infty = \infty$$

या $$\infty = 0$$

आप चौंक पड़ेंगे। कहेंगे कि मियां क्या यह जादू है। अनन्त शून्य हो सकता है; कभी नहीं। हां, कभी नहीं। परन्तु क्यों नहीं? इसका कारण यह कि अनन्त संख्या नहीं है। उसे हम

$$२ - २ = ०$$

की तरह घटा, जोड़ अथवा दूसरी क्रियाएं नही कर सकते।

एक प्रसिद्ध मंत्र है :—

पूर्णमद: पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

अर्थात् वह (ब्रह्म) पूर्ण है, यह (विश्व) पूर्ण है। (ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति हुई)—पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया जाता है। फिर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

शून्य को लीजिये

$$० - ० = ०$$

शून्य में से शून्य गया और शून्य ही बचा। शून्य की और विशेपता है। देखिए :

$$५^{३} = १२५$$
$$५^{२} = २५$$
$$\therefore \quad \frac{५^{३}}{५^{२}} = \frac{१२५}{२५} = ५$$
$$\text{और} \quad \frac{५^{५}}{५^{३}} = ५^{५-३} = ५^{२} = २५$$
$$\text{इसी प्रकार} \quad \frac{५^{२}}{५^{२}} = ५^{२-२} = ५^{०} = १$$
$$\text{तथा} \quad १०^{०} = १$$
$$\text{तथा} \quad क^{०} = १$$

अर्थात् जब शून्य का चोला कोई संख्या पहन लेती है तो १ हो जाती है। एक की पूजा इसलिए होती है कि प्रकृति के मूल में केवल एक प्राणी है, 'एकता' उसका सबसे अन्त का गुण है। वास्तव में शून्य ही पूर्ण है; अनन्त नहीं।

गणित में शून्य को संख्या माना गया है और ∞ को नहीं। परन्तु दोनों के गुण एक-से हैं। देखिए

$$\frac{५}{०} = \infty$$
$$\text{और} \quad \frac{५}{\infty} = ०$$

अर्थात् ये क्रियाएं परिवर्तनीय हैं। ∞ के स्थान पर ० रखने और ० के स्थान पर

∞ रखने से कोई अन्तर नहीं आता। फिर भी हम शून्य को संख्या और ∞ को संख्या नहीं मानते। कुछ कारण समझ में नहीं आता। हो सकता है (शून्य की परिभाषा हम इस प्रकार करते हैं कि किसी संख्या से उसे स्वयं को घटाने पर जो बचता है उसे शून्य कहते हैं) इसकी परिभाषा की यह विशिष्ट प्रणाली ही इस असमानता का कारण हो।

दूसरी बात :

$$\infty^{२} = \infty \qquad \ldots (१\cdot१)$$

$$०^{२} = ० \qquad \ldots (१\cdot२)$$

$$५^{\infty} = \infty \qquad \ldots (१\cdot३)$$

$$\left(\frac{१}{५}\right)^{\infty} = ० \qquad \ldots (१\cdot४)$$

$$५^{०} = १ \qquad \ldots (१\cdot५)$$

$$५ \quad \infty = \infty \qquad \ldots (१\cdot६)$$

$$\frac{१}{(१०)^{५०}} \times \infty = \infty \qquad \ldots (१\cdot७)$$

$$५ \times ० = ० \qquad \ldots (१\cdot८)$$

$$\frac{१}{(१०)^{५०}} \times ० = ० \qquad \ldots (१\cdot९)$$

१·१ से १·४ तथा १·७ से १·९ तक के समीकरणों में अनुरूपता है; परन्तु जहां $५^{\infty} = \infty$ वहां $५^{०} = १$ है। इसी अन्तर के कारण शून्य संख्या है अनन्त नहीं।

२

परमाणु के भीतर

"प्रकृति के सौन्दर्यपूर्ण कार्यों पर विचार करने एवं ईश्वर की अनन्त बुद्धिमत्ता और सौम्यता के प्रति सम्मान प्रकट करने से बढ़कर समय व्यतीत करने का और कोई साधन नहीं है।" (जॉन रे)

ईसा से ३७० वर्ष पूर्व यूनान के एक नगर के किसी मन्दिर में, एक सफ़ेद दाढ़ी वाला वृद्ध अपने जिज्ञासु शिष्यों की 'पदार्थ' के बारे में उठी जिज्ञासा को शान्त कर रहा है। "पदार्थ का कोई भी टुकड़ा ठीक उसी प्रकार विभिन्न सूक्ष्मतम कणों से बना है, जिस प्रकार हमारा यह मन्दिर विभिन्न ईटों से।" वृद्ध कहता है, "और वर्णमाला के अक्षरों की भांति इनकी संख्या अधिक नहीं है, तब भी जिस प्रकार वर्णमाला के अक्षर अपने विभिन्न प्रकार के संयोग से भाषा का निर्माण करते हैं उसी प्रकार ये कण भी सब भौतिक पदार्थों के निर्माता हैं। इन कणों से आगे हम पदार्थ को विभाजित नहीं कर सकते। इनको इसीलिए मैं परमाणु कहता हूं। ये इतने सूक्ष्म हैं कि तार्किक दृष्टि से इनका विभाजन असम्भव है।"

इस वृद्ध का नाम **डिमाक्रिटस** था और इसको हंसोड़ दार्शनिक कहते थे। डिमाक्रिटस ने यह भी बताया कि पदार्थ की रचना वायु, जल, भूमि तथा अग्नि के मूल कणों से होती है। इसके पश्चात् पारा, गंधक, नमक तथा आकाश के चार और

मूल कणों की वृद्धि हुई। उनकी धारणा थी कि सब धातुएं पत्थर और अग्नि के संयोग से बनती हैं। जगमगाते सोने और काले लोहे में क्या अन्तर है? यही न कि एक में अग्नि का तेज है, दूसरे में उसका अभाव! और यदि ऐसा है तो फिर लोहे में अधिक अग्नि देने से वह सोना क्यों नहीं हो जाता? इसी विश्वास पर मध्यकालीन रासायनिकों ने सस्ती धातुओं से सोना बनाने की लालसा से भट्टी के आगे बैठकर विज्ञान की वेदी पर अपने जीवन की बलि दे दी। लेकिन जब आज हम रबड़ का निर्माण कर सकने में सफल हुए तो सफलता देवी ने उन महान् पुरुषों पर कृपा क्यों नहीं की? वास्तव में इन वैज्ञानिकों की असफलता का कारण उनकी मूल कणों के बारे में अनभिज्ञता थी।

आज हम जानते है कि जल, वायु, अग्नि तथा भूमि कोई भी मूल कण नहीं हैं। और अग्नि के कणों का तो अस्तित्व ही नहीं है।

सोना क्यों नहीं लोहे से बनाया जा सका? क्योंकि ये दोनों मूलतः विभिन्न हैं। सोने के एक टुकड़े के चाहे हम कितने ही टुकड़े क्यों न कर लें, उसमें सोने के सब गुण रहेंगे। इनको हम तत्त्व कहते हैं। ८८ तत्त्व प्रकृति में पाये गये हैं और लगभग १० और प्रयोगशाला में बनाये गये हैं। आक्सीजन, सिलिकन, मैंगनिशियम और लोहा भूतल के ९० प्रतिशत भाग का निर्माण करते हैं और लगभग ५० तत्त्व हज़ारवें भाग का। पदार्थ सूक्ष्म परमाणुओं से बना है और एक तत्त्व के परमाणु दूसरे तत्त्व के परमाणुओं से भिन्न होते हैं। इन्हीं परमाणुओं से सारे विश्व की रचना हुई है।

२.२. परमाणु की सूक्ष्मता. परमाणु का ठीक क्या आकार है, उसका कितना भार है और पदार्थ में कितने परमाणु हैं? इन सब बातों को जानने की एक स्वाभाविक इच्छा होती है। परमाणु का ठीक आकार ज्ञात करने के कई तरीक़े हैं। एक खाली लम्बे बरतन को ठीक क्षैतिज दिशा में रखो। उसमें पानी भर दो और पानी के धरातल को स्पर्श करता एक तार लो। यदि तार के एक ओर तेल की एक छोटी-सी बूंद डाली जाय तो जिस ओर आपने तेल की बूद डाली है, उस ओर तेल सारे धरातल में फैल जावेगा। यदि अब आप तार को दूसरी तरफ़ सरकाते हुए तेल के धरातल को बढ़ायें तो एक धरातल का क्षेत्र वह आयेगा जहाँ तेल का धरातल टूट जावेगा। ठीक धरातल से टूटने के पहले के क्षेत्रफल को लिख लो। इस प्रयोग को कई बार करो। तेल का क्षेत्र बढ़ने से यह होगा कि इसकी तह धीरे-धीरे कम होती जावेगी और अन्त में ठीक धरातल टूटने से पहिले इस तह की मोटाई तैलाणु के व्यास के बराबर होगी।

स्पष्ट है कि उस तेल की बूंद के आयतन को यदि इस क्षेत्रफल से भाग कर दें तो अणु का व्यास मालूम हो जावेगा।

इस समय तक हमने यह नहीं बतलाया कि परमाणु का कितना आयतन होता है। विभिन्न तत्त्वों के परमाणु आयतन में अधिक भिन्नता नहीं रखते। परमाणु अति सूक्ष्म होते हैं और यदि इन परमाणुओं को सटा सटाकर एक सेन्टीमीटर रेखा में रखा जावे तो जानते हो कितने परमाणु उस पंक्ति में होंगे? विश्व-रचयिता ने ऐसे निःस्पृह योगियों की संख्या इस पंक्ति में दस करोड़ रख दी है। कल्पना करो सारे विश्व में इनकी संख्या की!! बारीक पेन्सिल से बनाया गया एक बिन्दु का इतना आकार होता है कि उसमें पचास लाख परमाणु आ सकते हैं। यदि हमारा यह भौतिक शरीर, बाल की भाँति पतला हो जावे तो, उस काल्पनिक शरीर पर उगे बाल का जो आकार होगा वही आकार एक परमाणु का होता है। पदार्थ की ठोस, द्रव तथा गैस की अवस्था के यही परमाणु कारण हैं। ठोस पदार्थ में ये एक दूसरे से खूब सटकर रहते हैं, द्रव में उससे कम तथा गैस में काफी फासले पर होते हैं।

२.३. परमाणु दर्शन. ब्रिटिश भौतिकशास्त्री ब्रैग ने संसार को दिखलाया कि न केवल तार्किक और अप्रत्यक्ष साधनों से ही परमाणु के अस्तित्व का ज्ञान होता है, अपितु उसके चित्र भी लिये जा सकते हैं। परमाणु का फोटोग्राफ़ लेना कोई आसान काम नहीं है। चित्र लेते समय यदि प्रकाश का तरंग दैर्ध्य (wavelength) उस वस्तु से बड़ा हुआ तो चित्र बिलकुल खराब हो जावेगा। जीवशास्त्री इस बात को जानते हैं कि बैकटीरिया का चित्र खींचते समय उन्हें कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जब कि बैकटीरिया का आकार केवल एक सेन्टीमीटर का हज़ारवां भाग होता है। चित्र को ठीक बनाने के लिए नील-लोहितोत्तर (ultra violet) प्रकाश का उपयोग करते हैं। परन्तु अणु का आकार इन दोनों उपायों को व्यर्थ कर देता है। एक्स-किरणों का तरंग-दैर्ध्य सामान्य प्रकाश के तरंग-दैर्ध्य से हजारों गुना कम होता है। परन्तु कोई भी महान् यज्ञ बिना आहुति के पूर्ण नहीं होता। वैज्ञानिक अपने हृदय में एक आकांक्षा संजोए बैठा रहा। एक्स-किरणें लगभग प्रत्येक वस्तु में बिना परावर्त्तन के गुजर जाती हैं।

साहसी ब्रैग अपने काम में जुटा था। उसने गणितज्ञ आबे के सिद्धान्त की सहायता ली। सूक्ष्मदर्शक वस्तु को विभिन्न धारियों में बांटता है, फिर प्रत्येक धारी को बढ़ाता है और अन्त में सबको मिलाकर चित्र में बदल देता है। इसी सिद्धान्त पर चलकर ब्रैग ने अणु का चित्र खींचा।

परमाणु पदार्थ का वह छोटे-से-छोटा टुकड़ा है, जिससे सारे पदार्थ का निर्माण हुआ है, ऐसा डिमाक्रिटस के हज़ारों वर्ष बाद तक भी माना जाता रहा। परमाणु की अविभाज्यता बहुत दिनों तक चलती रही और विभिन्न तत्त्वों के विभिन्न गुणों का कारण उनका ज्यामितीय आकार बना रहा। उदजन के परमाणुओं को गोल आकार और सोडियम तथा पोटैशियम के परमाणुओं को अंडाकार दिया गया। ऑक्सीजन के परमाणु को गुठली का आकार दिया गया और यह माना गया कि इस गुठली में आरपार एक छेद है। जल के अणु में जो सोडियम उदजन का स्थान ग्रहण करता है, उसका कारण यह माना गया कि उदजन परमाणु के छिद्र में गोलाकार परमाणु की अपेक्षा अंडाकार परमाणु अच्छी जगह लेता है। इसी प्रकार तत्त्वों द्वारा निकले विभिन्न प्रकाशीय वर्ण-पट (Optical Spectra) का कारण भी उनका आकार ही रहा। इस प्रकार तत्त्वों के रासायनिक और भौतिक गुणों का कारण उनके परमाणुओं के आकार के आधार माने जाने से विज्ञान में अधिक उन्नति सम्भव नहीं हुई। परमाणु को समझने में प्रथम प्रयास उस समय हुआ, जब यह समझ लिया गया कि परमाणु का आकार सरल नहीं है, वरन् इसकी भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं के कारण ही उसके आकार की यह जटिलता है।

परमाणु के नाज़ुक एवं जटिल शरीर को भेद कर उसकी आन्तरिक रचना से परिचित होने का श्रेय आंग्ल भौतिकशास्त्री थामसन को है। उसने संसार को दिखा दिया कि प्रत्येक तत्त्व के परमाणु दो भागों से बने हैं; एक भाग ऋणविद्युत् से पूर्ण है और दूसरा धनविद्युत् से; दोनों भाग पारस्परिक वैद्युतिक आकर्षण से ठहरे हैं। इन दोनों भागों का निर्माण स्वयं कणों से हुआ है और ऋणविद्युत् वाले कणों को 'विद्युताणु' तथा धनविद्युत् वाले कणों को 'धनाणु' संज्ञा दी गई है। एक परमाणु में ऋण-आवेश और धन-आवेश समान होते हैं, अतः परमाणु विद्युतसंचारहीन अवस्था में होता है। परमाणु में विद्युताणु कुछ ढीली अवस्था में होते हैं, इसी कारण एक या एक से अधिक विद्युताणु परमाणु को छोड़कर भाग भी सकते हैं। स्पष्ट है कि इस परमाणु के अवशेष पर धनविद्युत् रहेगी। इस प्रकार के अवशेष को धन-आयन कहते हैं। और यदि किसी दूसरे परमाणु के विद्युताणु इस परमाणु में आकर निवास करने लगें, तो इस प्रकार के अवशेष को ऋण-आयन कहेंगे। परमाणु में ऋणविद्युत् वा धनविद्युत् की अधिकता करने की क्रिया को 'आयनीकरण' कहते हैं।

एक विद्युताणु की मात्रा बहुत न्यून होती है। थामसन ने पता लगाया कि एक विद्युताणु की मात्रा उदजन के एक परमाणु की मात्रा का १८४०वां भाग होती है। और इस प्रकार परमाणु की सारी मात्रा धन-आवेशित भाग में निहित होती है। यहाँ तक थामसन ठीक था। परन्तु उसका यह कहना कि परमाणु के धन-आवेश का वितरण समान है, सत्य न था। सन् १९११ में रदरफोर्ड ने यह सिद्ध किया कि परमाणु के ठीक केन्द्र में स्थित अति सूक्ष्म नाभि में ही सारा धन-आवेश निहित है। थामसन ने परमाणु की तुलना तरबूज़ से की थी जिसमें बीजों की उपमा विद्युताणुओं से दी गई थी और इस प्रकार विद्युताणुओं का परमाणु में कोई निश्चित क्षेत्र नहीं था। परन्तु रदरफोर्ड के प्रयोगों ने इस विश्वास की नींव हिला दी और उसने बतलाया कि विद्युताणु का परमाणु के आवरण में निश्चित स्थान है। परमाणु की तुलना तरबूज़ से नहीं, अपितु सौर-परिवार से की जा सकती है। सूर्य की, परमाणु की नाभि से और ग्रहों की विद्युताणुओं से तुलना कीजिए। जिस प्रकार सौर-परिवार में सारी मात्रा का ९९·८७ प्रतिशत भाग सूर्य में केन्द्रित है उसी प्रकार परमाणु की ९९·८७ प्रतिशत मात्रा नाभि में केन्द्रित होती है। परमाणु की नाभि में तथा विद्युताणु में वैद्युतिक आकर्षण-बल उसी नियम के अधीन काम करता है जो सूर्य और ग्रहों के बीच क्रियाशील है।

अब हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि तत्त्वों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों की भिन्नता का कारण, उनका ज्यामितीय आकार नहीं, वरन् नाभि के चारों ओर गतिशील पहरेदारों (विद्युताणुओं) की संख्या है। और चूंकि परमाणु विद्युत्संचारहीन अवस्था में होता है, इन पहरेदारों की संख्या नाभि में स्थित धन विद्युत की इकाइयों से नापी जावेगी। रदरफोर्ड ने यह भी ज्ञात किया कि यदि इन रासायनिक तत्त्वों को उनके भार के अनुसार एक क्रम मे बांधा जावे, तो इस क्रम में तत्त्वों की विद्युताणुओं की संख्याओं में एक का अन्तर होगा। उदजन के एक परमाणु में एक विद्युताणु, हीलियम में दो, लीथियम में तीन तथा इसी प्रकार सबसे अधिक भारी यूरेनियम के परमाणु में ९२ विद्युताणु होते हैं। तत्त्वों के श्रेणीविभाजन में विद्युताणुओं की यह संख्या, जिसे '**परमाणु संख्या**' कहते हैं, बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। और इस भाँति किसी तत्त्व की भौतिक एवं रासायनिक क्रियाओं का ज्ञान उसकी परमाणु संख्या से निश्चित हो जाता है।

नाभि के चारों ओर परिक्रमा लगाने वाले विद्युताणु आवरण में एक विशेष स्थिति में होते हैं। कई रास्तों से ये विद्युताणु नाभि के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। प्रथम

मार्ग (Shell) में दो विद्युताणु होते हैं। दूसरे दो मार्गों में आठ-आठ विद्युताणु होते हैं। और सबमें १८ होते हैं। ऐसे मार्ग पूर्ण मार्ग कहलाते हैं। अब हम इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि सोडियम और क्लोरीन के परमाणुओं को ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी कि वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो कर नमक के एक अणु का निर्माण करें? वास्तव में बात यह है कि क्लोरीन के परमाणु के तीसरे मार्ग को पूर्ण करने के लिये एक विद्युताणु की आवश्यकता होती है और सोडियम के परमाणु के तीसरे मार्ग में केवल एक विद्युताणु होता है। दोनों अपूर्ण हैं। स्वभावतः यह अकेला विद्युताणु क्लोरीन के पास जावेगा और उसके तीसरे अपूर्ण मार्ग को पूरा करेगा। इस आदान-प्रदान में सोडियम-परमाणु में धन-आवेश आ जाता है और क्लोरीन परमाणु में ऋण-आवेश। वैद्युतिक आकर्षण-शक्ति के अधीन ये दो आयन परस्पर मिलकर नमक के एक अणु का निर्माण करेंगे। इसी प्रकार ऑक्सीजन के परमाणु के दूसरे मार्ग में दो विद्युताणुओं का अभाव होता है; इसकी पूर्ति यह परमाणु उद्जन के दो विद्युताणुओं को चुराकर करता है और इस चोरी से जल की उत्पत्ति होती है। बहुत से तत्त्वों की क्रियाशीलता के अभाव का कारण भी यही मार्ग है। हीलियम, आरगन, नियोन तथा जीनोन के परमाणुओं के मार्ग पूर्ण हैं। उनको न तो किसी से विद्युताणु लेने की आवश्यकता है और न देने की। ये परमाणु एकान्तवास पसन्द करते हैं और इनके तत्त्व भी रासायनिक क्रियाओं में भाग नहीं लेते।

आओ अब हम धातुओं पर भी थोड़ा-सा विचार कर लें। धातु-तत्त्वों के परमाणु के वाह्य मार्ग में विद्युताणु इतने ढीले होते हैं कि उनमें से एक न एक उद्दण्ड विद्युताणु भाग जाता है। इस प्रकार धातु का आन्तरिक भाग इन स्वतंत्र विद्युताणुओं से परिपूर्ण हो जाता है और ये परमाणु जंगली पशु की भांति धातु के अन्दर घूमते रहते हैं। जब धातु के एक तार के दोनों सिरों पर वैद्युतिक बल लगाया जाता है, तब ये स्वतंत्र विद्युताणु बल की दिशा में भाग खड़े होते हैं और विद्युत्धारा को जन्म देते हैं। ये ही स्वतंत्र विद्युताणु ताप-संचालन का कारण हैं।

२.४. **परमाणु के नाभि की रचना.** कदाचित् पाठक यह समझ रहे होंगे कि परमाणु की नाभि का आकार सरल है। ऐसा नहीं है। स्वयं नाभि दो प्रकार के कणों द्वारा बनी है: धनाणु तथा हीनाणु। परमाणु की सारी मात्रा इन दो प्रकार के कणों में निहित होती है। नाभि के दोनों प्रकार के कणों में प्रत्येक कण की मात्रा एक इकाई की होती है। यहां हमारा इकाई मात्रा से तात्पर्य उस मात्रा से है जो ऑक्सीजन के

परमाणु के भार का एक सोलहवां भाग होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक कण की मात्रा-संख्या एक होती है। हीनाणु आवेशहीन होते हैं। धनाणु में धन-आवेश होता है और उसका परिमाण विद्युताणु के आवेश के समान होता है। नाभि में परमाणु-संख्या के समान धनाणु होते हैं और इसीलिए परमाणु विद्युत्संचार हीन अवस्था में होता है। परमाणु की मात्रा-संख्या हीनाणुओं तथा धनाणुओं की संख्या के योग के बराबर होती है। इन दोनों प्रकार के कणों को हम नाभि-कण कहते हैं। इस प्रकार परमाणु-मात्रा नाभि-कणों की मात्रा के बराबर होती है।

सामान्य उद्जन की नाभि सबसे सरल है। इसमें केवल एक धनाणु होता है। सबसे अधिक पाये जानेवाले आक्सीजन के रूप में आठ धनाणु और आठ हीनाणु होते हैं। तत्वों के विभिन्न रूपों के हीनाणुओं की संख्या में अन्तर होता है। उनकी परमाणु-संख्या एक होती है केवल मात्रा-संख्या में अन्तर होता है। भारी उद्जन की नाभि में एक हीनाणु और एक धनाणु होता है और इस नाभि को प्रायः द्वितारणु कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हीनाणु, धनाणु तथा ऋणविद्युताणु किसी भी पदार्थ के निर्माण के लिए पर्याप्त हैं। वास्तव में यहां यह प्रश्न उठता है कि यदि ऋण-विद्युत् के स्वतंत्र आवेशवाले विद्युताणु हैं तो क्या कारण है कि ऐसे धन-विद्युत् से युक्त स्वतंत्र आवेशवाले धन-विद्युताणु न हों? और इसी भांति जब एक हीनाणु को धन-आवेश मिलने पर धनाणु में बदलते देखते हैं तो क्या कारण है कि हीनाणु ऋण-आवेश मिलने पर ऋणाणु (– ve proton) नहीं बन पाता?

प्रकृति में धन-विद्युताणुओं का अस्तित्व होता है और वे सब प्रकार से ऋण-विद्युताणुओं के समान होते हैं, केवल इनमें धन-आवेश होता। और बहुत सम्भव है कि ऋणाणुओं का अस्तित्व भी हो, यद्यपि इस दिशा में १९३० तक हुए सब प्रयोग निष्फल सिद्ध हुए हैं। हम यह जानते हैं कि विरुद्ध आवेशवाले कण पास-पास रखने से अपना सर्वनाश कर लेते हैं। और चूंकि विद्युताणु धन तथा ऋण विद्युत् के स्वतंत्र आवेश का निरूपण करते हैं, ऐसी अवस्था में एक ही स्थान पर हम उनका सह-अस्तित्व स्वीकार नहीं कर सकते। जैसे ही धन-विद्युताणु की ऋण-विद्युताणु से भेंट होती है, वैसे ही उनका वैद्युतिक-आवेश एक दूसरे का निराकरण कर देगा और ये दो विद्युताणु अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठेंगे। इस सिलसिले से एक बहुत तीव्र विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण (Electro-magnetic radiation) का जन्म होता है। इस विकिरण में उतनी ही ऊर्जा होती है जितनी उन दोनों विद्युताणुओं में, क्योंकि ऊर्जा का

न विनाश होता है और न निर्माण। प्रोफ़ेसर बौर्न इस घटना को दो विद्युताणुओं का प्रणय कहता है और निराशावादी प्रोफ़ेसर ब्राउन इसको इन दोनों की पारस्परिक आत्महत्या कहता है। इस विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण को हम γ–किरण (गामा-किरण) कहते हैं। इस प्रबल गामा-विकिरण से धन और ऋण-विद्युताणुओं की उत्पत्ति होती है, लेकिन केवल उसी समय जब कि यह विकिरण किसी नाभि के समीप से होकर जाता है।

अब ज़रा-सा विचार ऋणाणुओं पर भी कर लें। हीनाणुओं को ऋण-आवेश देकर इनके निर्माण की कल्पना की जा सकती है। इस कल्पना के आधार पर यदि परमाणु की रचना पर विचार किया जाय तो हम देखेंगे कि ये ऋणाणु क्षण भर के लिये ठहरते हैं। मान लो कि इस कल्पित परमाणु की नाभि में हीनाणु एवं ऋणाणु हैं तथा इसके आवरण में धन-विद्युताणु हैं। इन कल्पित परमाणुओं के गुण ठीक वही होंगे जो वैसे परमाणुओं के। वास्तव में इस प्रकार बने कल्पित पदार्थों में तथा दूसरे सामान्य पदार्थ में उस समय तक किसी भी अन्तर का दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता, जब तक उन दोनों पदार्थों को पास-पास नहीं लाया जाता। इस प्रकार के दो विरोधी पदार्थों के पास-पास आने पर आत्म-संहार आरम्भ हो जावेगा। धन और ऋण, विद्युताणु एवं ऋणाणु तथा धनाणु अपना निराकरण करने में लग जावेंगे : प्रकट है कि इस सिलसिले में ऊर्जा का एक बहुत बड़ा परिमाण निकलेगा।

२·५. परमाणु और सौर प्रणाली. परमाणु के शरीर के अंग-अंग का परिचय आपको मिल गया है, इसमें कदाचित् आपको सन्देह नहीं रहा होगा। परन्तु एक बात आपको अभी तक हमने नहीं बताई। परमाणु की सौर परिवार से तुलना की जा चुकी है। अब आप यह भी आशा रखते होंगे कि जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करता हुआ ग्रहमंडल, एक नियम के अधीन काम कर रहा है, उसी नियम के अधीन परमाणु के विद्युताणु भी नाभि के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। साथ-साथ आप इन विद्युताणुओं का परिक्रमा के मार्ग अंडाकार होने की संभावना पर पूरा विश्वास किये बैठे हैं। यहां आपको यह बताना उचित है कि जिस नियम की हम बातें कर रहे हैं, उससे हमारा तात्पर्य यही है कि विद्युताणु और नाभि के बीच का आकर्षण-बल, इन दोनों की दूरी पर निर्भर करता है। जितनी दूरी अधिक होगी उतना ही यह बल कम होगा। इस सिलसिले में एक बात और विचारणीय है : विद्युताणुओं की तरह सौर-परिवार के ग्रह विद्युन्मय नहीं हैं। यह एक महान् अन्तर है। और ऐसे विद्युताणुओं से, जो विद्युत्-आवेशित हों

और नाभि की परिक्रमा कर रहे हों, यह आशा रखना कि वे अपने चारों ओर तीव्र विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण को जन्म देंगे निरर्थक नहीं हैं। यदि यह मान लिया जावे, जैसा कि मानना पड़ेगा, यदि विज्ञानमें संगति रखनी है, कि ये परिक्रमा करते हुए विद्युताणु एक विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण को जन्म देंगे, तो यह भी निश्चित है कि यह विकिरण इन विद्युताणुओं की ऊर्जा लेकर ही अपना अस्तित्व रख सकता है। और जब यह मान लिया गया कि ये विद्युताणु शनैः शनैः अपनी ऊर्जा खो रहे हैं तो उनके अंडाकार मार्ग की कल्पना असंगत है। तब हमें यह मानना पड़ेगा कि उनका मार्ग एक Trajectory है, और यह भी कि एक समय ऐसा भी आवेगा जब विद्युताणु की सारी ऊर्जा समाप्त हो जावेगी और ये बेचारे गतिशून्य विद्युताणु नाभि के आंचल में मुंह छिपाकर सदैव के लिए सो जावेंगे! विद्युताणुओं की गति और उनके आवेश के परिमाण से हमारा परिचय है और उसके आधार पर हम यह मान सकते हैं कि विद्युताणुओं को नाभि में मुह छिपाने में तथा अपनी ऊर्जा खोने में एक सेकेन्ड का लाखवां भाग भी नहीं लगेगा।

परन्तु ऐसा नहीं है। परमाणु का आकार स्थायी है। न विद्युताणु अपनी ऊर्जा खोते हैं और न इस प्रकार अपने मार्ग से ही विचलित होते हैं। यह कैसे हुआ? एक अजीब प्रश्न बन गया। क्या बात हुई कि न्यूटन के गतिविज्ञान के सिद्धान्त विफल हुए? आखिर ऐसी प्रतिकूलता का क्यों आभास हुआ?

इसका एक उत्तर है। हमने यह मान लिया कि परमाणु के अन्दर काम करने वाला नियम और आकाश में दिखाई देनेवाले नक्षत्र तथा ग्रह के बीच काम करनेवाला नियम एक है। यही नहीं, अपितु साधारण आकारवाली वस्तुओं में इसी एक नियम का आधिपत्य है। बहुत दिनों तक इस नियम की परम सत्यता पर विश्वास किया जाता रहा, छोटी-छोटी वस्तुओं से लेकर विशाल नक्षत्रों ने इस नियम की शक्ति को स्वीकार किया। पर देखिए टूटी कहां कमन्द। इस नाचीज़ क्षुद्र वस्तु परमाणुने इस महाशक्ति को चुनौती दी और उसकी सत्यता को ललकारा। नक्षत्रों ने इस नियम के आधिपत्य को स्वीकार करके तो इसको अमरत्व प्रदान किया। लेकिन पता नहीं यह क्यों मान लिया गया कि जो नियम नक्षत्रों में लागू होता है, वही साधारण वस्तुओं में और वही परमाणु जैसे सूक्ष्म पदार्थ में—जिसका आकार किसी भी दृष्टिगोचर वस्तु का एक करोड़वां भाग भी नहीं है—लागू होगा। इस प्रकार यदि गतिविज्ञान के साधारण नियम परमाणु के रहस्योद्घाटन में असमर्थ होते हैं तो हमें विस्मित नहीं होना चाहिए। अपितु हमें अब

गतिविज्ञान की मूल धारणाओं का एक बार फिर अध्ययन करना चाहिए और देखना चाहिए कि हम कहां भूले हैं।

गति-विज्ञान की मूल धारणाएं दो हैं, वेग और Trajectory। हम यह मानते हैं कि किसी चल-कण का, उसकी Trajectory में किसी नियत समय पर एक विशेष स्थान होता है। ये ही विशेष स्थान एक अविच्छिन्न मार्ग का निर्माण करते हैं। इसको हम स्वयं सत्य मानते हैं और इसकी सत्यता में सन्देह नहीं करते। कणों की गति के सिद्धान्त का आधार यही मूल धारणा है। दो विभिन्न समयों में कण के विभिन्न स्थानों की जो दूरी होती है, इस दूरी को यदि इस समय से भाग कर दिया जावे तो हमें वेग की जानकारी हो जावेगी। अब तक सारे गति-विज्ञान की रचना के अधिकारी यही वेग और स्थान रहे हैं। इन दोनों धारणाओं की प्रामाणिकता पर आज तक के विज्ञान ने कभी सन्देह प्रकट नहीं किया। जैसा हमने पहिले ही कहा कि परमाणु ने इस सिद्धान्त को चुनौती दी। अब दो बातें हमारे सामने हैं: या तो परमाणु के इस आकार की धारणा निर्मूल है, और या न्यूटन के गति-सिद्धान्त अशुद्ध हैं। हां, इनमें पिछली बात अधिक सत्य है। गति-विज्ञान की मूल धारणाएं अपूर्ण हैं।

Trajectory की अविच्छिन्नता (Continuity) की धारणा के आधार पर परमाणु में जब इस नियम का प्रयोग किया गया तब यह असत्य निकली और विरोधी परिणाम दृष्टिगोचर हुए। यदि इन धारणाओं पर आधारित इन नियमों का उपयोग परमाणु जैसे अति सूक्ष्म पिंडमें भी करना है तो हमें इनमें आमूल परिवर्तन करने पड़ेंगे। और यदि वे नियम सूक्ष्म पिंडोंमें लागू नहीं होते तो हम इस परिणाम पर भी पहुंच सकते है कि इनका उपयोग विशाल वस्तुओं में भी पूर्णतया सही नहीं है; वह सत्यता के सन्निकट हैं, स्वयं सत्य नहीं हैं। तब फिर सत्य क्या है? विज्ञान की जड़ हिल चुकी थी, एक क्रान्ति फिर मच गई। ठीक उसी प्रकार जब परमाणु के आकार की जटिलता का ज्ञान हुआ था।

वास्तवमें यदि Trajectory जैसा कोई मार्ग है तो वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा उसका चित्रांकन सम्भव होना चाहिए। साथ-साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि किसी भी गतिशील कण की Trajectory के चित्र में अंकित करने से ही उसकी गति में बाधा पड़ती है और अन्तर आ जाता है। ये दो विरोधी सिद्धान्त एक दूसरे से टकराते रहे। प्लांक ने आकर इस लड़खड़ाते गतिविज्ञान को सहारा दिया। उसने परमाणु की यांत्रिक क्रियाओं का अध्ययन किया और वह इस परिणाम पर पहुंचा कि "दो वस्तुओं की क्रिया

तथा प्रतिक्रियाओं में एक निम्न सीमा है।" इस सिद्धान्त ने स्थिति को संभाला, अब यह भय जाता रहा कि चित्रांकन मात्र से ही मार्ग मे बाधा उत्पन्न होगी, और चित्रांकन द्वारा उत्पन्न बाधा स्वयं गति का एक अविभाज्य अंग बन गई। अब हम चित्र की रेखा द्वारा उस मार्ग के निर्माण की सम्भावना नहीं करते, अपितु एक पट्टी द्वारा करते है। हम विशाल पिंड में प्रतिक्रिया की निम्नता, अथवा प्लांक के शब्दों में 'क्रिया के क्वांटा' (जिसका विवरण आगे किया जावेगा) की अपेक्षा नही करते, क्योंकि इसका परिमाण स्वयं बहुत सूक्ष्म होता है और ये केवल सूक्ष्म वस्तुओं में ही लागू होती है। बन्दूक से निकली एक गोली की Trajectory की मुटाई गोली के परमाणु से कई गुना कम होती है, गोली की अपेक्षा तो Trajectory की मुटाई शून्य मान लें तो कोई विरुद्धता उत्पन्न नहीं हो सकती। परन्तु विद्युताणुओं के सम्बन्ध मे हम इसे स्वीकार नही कर सकते। तो फिर किस प्रकार इन विद्युताणुओं की गति को समझें?

इसे समझने के लिये जरा प्रकाश-किरणों को देखें। हम जानते हैं कि दैनिक जीवन में घटित प्रकाशीय घटनाओ का विश्लेषण हम उनके रेखीय प्रसरण से कर सकते हैं। साथ ही साथ हम इस बात से भी परिचित हैं कि जिस मार्ग से प्रकाश आता है उसका आकार यदि तरंग-दैर्ध्य की अपेक्षा अधिक बड़ा हुआ तो उसका प्रसरण रेखीय नहीं होगा। बहुत जगह यह सिद्धान्त विफल हो चुका है। इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हम अत्यन्त सूक्ष्म प्रकाश-रश्मि की रचना नहीं कर सकते। इस घटना को समझने के लिये हम यह मानने को विवश होते हैं कि कोई 'ऐसी चीज' है जो सारे स्थान पर छाई है। इसी प्रकार यंत्र-विज्ञान में हम कदापि यह नहीं कह सकते कि अमुक कण इस समय यहाँ होगा। केवल यही कहा जा सकता है कि इस कण के वहा होने की संभावना यह है। अतः हमारा विद्युताणुओं के एक निश्चित मार्ग की धारणा करना ठीक नही हुआ; संभावना के आधार पर हमको उनकी स्थिति का आभास हो सकता है; दूसरे प्लाक के क्वान्टम सिद्धान्त से हमने यह भी सीखा कि इन विद्युताणुओं में एक न्यूनतम ऊर्जा रहेगी जिसे खोने का इन्हें कोई अधिकार नहीं है; न यह ऊर्जा मिटेगी। और न यह विद्युताणु कभी नाभि में जावेगा।

अब हम उस बल का विवेचन करेंगे जो परमाणु के विभिन्न अंगों को एक सूत्र में बांधकर उनका संचालन कर रहा है। गिलास में रखा हुआ पानी क्यों नहीं इधर-उधर बह जाता, जो बल पानी को बाहर बहने से रोकता है वही विद्युताणुओं और नाभि-कणों में सम्बन्ध स्थापित किये है। इसको हम Cohesive बल कहते हैं। यही

बल धनाणुओं के प्रतिसरण को रोक रहा है। यदि नाभि को ही देखा जावे तो मालूम होगा कि इसकी आकृति दानों के एक ढेर की जैसी है। इस ढेर के बहुत से गुण द्रव जैसे होते हैं। अन्दर के कण तो चारों दिशाओं में पासवाले कणों द्वारा आकर्षित होकर सन्तुलन की अवस्था में हैं और बाहर के कण इसलिए सन्तुलन में हैं कि उन पर कुछ बल काम कर रहे हैं, जो उन्हें अन्दर की ओर खीचते हैं। इन बलों को हम Surface Tension के बल कहते हैं। परन्तु यहाँ एक बात और स्मरणीय है—वह यह कि इस ढेर का घनत्व पानी के घनत्व से २४×१०^{११} गुना अधिक है। और इस द्रव के Surface Tension का बल पानी के बल से $१०^{१८}$ गुना अधिक है। नाभिकणों में से कुछ विद्युन्मय भी हैं और इस कारण धनाणु परस्पर प्रतिसारित करते हैं। दो विरोधी बल एक साथ काम कर रहे हैं, एक Surface Tension का और दूसरा धनाणुओं में पारस्परिक प्रतिसारण का बल। नाभि के अस्थायी अस्तित्व का कारण अब हम बता सकते हैं। यदि Surface Tension का बल अधिक हुआ तो नाभि का विघटन नहीं हो सकता और यदि धनाणुओं का बल अधिक हुआ तो नाभि अपना अस्तित्व खो देगी। सन् १९३९ ई० में बोर तथा ह्वीलर ने यह प्रमाणित किया कि तत्त्वों की सारिणी में चांदी तक के तत्त्वों में Surface Tension के बल की प्रधानता रहती है और उससे आगे लगभग सभी भारी तत्त्वों की नाभियों में धनाणुओं के प्रतिसारण के बल की प्रधानता रहती है।

२·६. **नाभि.** परमाणु की नाभि के बारे में जितना हमने इन गत वर्षों में सीखा है, वह सब एक आश्चर्यजनक गति के साथ हुआ है। एक नये विज्ञान, 'नाभि-विज्ञान' का जन्म हो चुका है, जिसकी तुलना सहज नहीं है, यद्यपि नाभि-विज्ञान के बहुत से सिद्धान्तों को प्रयोगों द्वारा अपनी सत्यता सिद्ध करना है।

हम यह जानते हैं कि जिस परमाणु की परमाणु-संख्या 'स' है, उसकी नाभि में 'स' धनाणु होंगे। परमाणु की सारी मात्रा इसी नाभि में केन्द्रित होती है यह दुहराने की आवश्यकता नहीं है। हीनाणु और धनाणु दोनों को मिलाकर नाभि की रचना हुई है। ये नाभिकण नाभि के अन्दर बड़ी तीव्र गति से घूमते रहते हैं, अतः इन नाभिकणों में चल-ऊर्जा होती है। इन सब नाभिकणों की ऊर्जा के योग को नाभि की अन्तर-ऊर्जा कहते हैं। यह ऊर्जा पैदा करने में धनाणुओं के प्रतिसारण बल का योग होता है। हम यह भी बता चुके हैं कि तत्त्वों की सारिणी में चांदी से आगे के सभी भारी तत्वों की नाभियाँ अस्थायी हैं। कुछ ऐसे तत्त्वों के परमाणुओं की नाभियों को अचानक

और एकदम टूटते देखा गया है। नाभि के इस टूटने की क्रिया को हम रेडियो धर्म कहते हैं और ऐसे तत्त्वों को रेडियोधर्मी। इस अनुसंधान का श्रेय श्री एवं श्रीमती क्यूरी को है। इन रेडियोधर्मी तत्त्वों के परमाणु की नाभियाँ कभी-कभी टूटकर एक दूसरे हल्के तत्त्व के परमाणु की नाभि में परिवर्तित हो जाती हैं। इस विघटन में विद्युताणु बाहर फेंक दिये जाते हैं, जिन्हें हम-β किरण कहते है, हीलियम के परमाणु, जिन्हें α-किरण कहते हैं, बाहर निकलते हैं और एक (γ-किरण) बड़े तेज़ घनी आकृतियोंवाले विकिरण का जन्म होता है। आज वह सपना जिसको पूरा करने के लिये मध्यकालीन विज्ञानवेत्ताओं ने अपने जीवन खपा दिये, पूरा हो सकता है। सोना लोहे से विभिन्न हुआ तो क्या हुआ, हम उनकी नाभियों को बदल सकते हैं। इसी के साथ यह भी सिद्ध हो गया कि नाभि का आकार सरल नहीं है। नाभियों की इस विघटन क्रिया पर हमारा कोई प्रभाव नहीं है। हम इस घटना का दर्शन कर सकते हैं, हस्तक्षेप नहीं। सन् १९१९ में रदरफोर्ड ने कृत्रिम उपायों से भी नाभि को तोड़कर दिखा दिया। उसने रेडियोधर्मी पदार्थो से α-किरण उपलब्ध की और उनका हल्के परमाणुओं पर आक्रमण करके इनकी नाभियों का विघटन किया। और भी अधिक हल्के परमाणु की उपलब्धि हुई। लारेंस ने एक साइक्लोट्रोन यंत्र का आविष्कार किया जिसके आधार पर नाभि के तोड़ने में बहुत सहायता पहुंची है। इन खोजों से बहुत से तथ्यों के रहस्य की जानकारी हुई। यह देखा गया कि इस विघटन क्रिया में कुछ ऐसी अस्थायी नाभियों का निर्माण होता है जिन्हें हम कृत्रिम रेडियो-तत्त्व कहते हैं। इन रेडियो तत्त्वों की प्रकृति यह होती है कि इनकी नाभियों में फिर एक बार और विघटन की क्रिया होती है और एक दूसरे तत्त्व तथा अनेक विकिरणों का जन्म होता है। सन् १९३१ और १९३२ में धन-विद्युताणु तथा हीनाणु के अस्तित्त्व की खोज ने विज्ञान के क्षेत्र में एक महाक्रान्ति ला दी। ग्लूसीनियम पर α-किरणों के आक्रमण से एक नये कण का निर्माण होता हुआ देखा गया। इस कण का अस्तित्त्व अब तक एक गहरे अंधकार में था। इस कण पर कोई आवेश नहीं होता। हाँ, और सब भाँति यह धनाणु के समान होता है। उसके बाद से यह हीनाणु बहुत-सी नाभि-क्रियाओं तथा कॉस्मिक (Cosmic) किरणों में मिलने लगा। धन-विद्युताणु की चर्चा हम पहिले भी कर चुके हैं और बता चुके हैं कि ये भी विद्युताणु की भाति होते हैं, इसकी उतनी ही मात्रा होती है जितनी विद्युताणु की। केवल धन-विद्युत् से आवेशित होते हैं। Cosmic किरणों में ही इनकी खोज हुई। ये पदार्थ में ठहर नहीं सकते, इसका कारण हम पहिले

ही बता चुके हैं। विरोधी विद्युत्वाले इन विद्युताणुओं के विनाश से एक बहुत तीव्र विकिरण की उत्पत्ति होती है। वास्तव में यह पदार्थ का विनाश है! अब जिसे हम पदार्थ कहते हैं वह पदार्थ नहीं रहा, अपितु ऊर्जा में परिवर्तित हो गया। ऊर्जा भी पदार्थ में बदल सकती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में विकिरणों के कारण ऐसे युगल का जन्म भी हो जाता है।

अब यदि ध्यानपूर्वक देखा जावे तो हमें मालूम होगा कि हीनाणु और धनाणु वस्तुत: एक ही हैं, केवल विद्युतिक दृष्टि से भिन्न हैं। हीनाणु को धनविद्युत् दीजिये तो धनाणु बन जावेगा। ये दोनों नाभिकणों की दो स्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। धनाणु से हीनाणु की रचना भी संभव है और विकिरणों से विद्युताणुओं की उत्पत्ति होती है, इस धारणा पर आधारित सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

२·७. परमाणुक-ऊर्जा. परमाणु बम और 'ऐटोमिक एनर्जी' की चर्चा हम आजकल खूब सुनते हैं। यह परमाणुक-ऊर्जा क्या है? क्या कभी सोचा है आपने इस पर? क्या वास्तव में यह सारे परमाणु में विराजमान है या उसके किसी विशिष्ट भाग में? वास्तव में यह परमाणु की नाभि में छिपी है और इसको नाभि-ऊर्जा की संज्ञा देना अधिक संगत होगा। यह ऊर्जा परमाणु के वाह्य आवरण से नहीं आती, अपितु उसकी नाभि से इसका उदय होता है। लगभग ४० वर्षों से हम बराबर यह कहते आ रहे हैं कि परमाणु के केन्द्र में एक नाभि है जिसमें उसकी सारी मात्रा केन्द्रित है। नाभि के वाह्य आवरण में परिक्रमा करते हुए विद्युताणु रहते हैं। हम जानते हैं कि लकड़ी को जलाकर हमें उष्णता प्राप्त होती है, सोडियम और जल के मिश्रण से भी उष्णता मिलती है और नमक तथा बर्फ के मिलाने से ठंडक। जलने के बाद लकड़ी ने अपना अस्तित्व खो दिया, राख और धुआं बन गई। इस प्रकार के अनुभवों से मानव जाति आदि काल से परिचित है। नाइट्रोग्लिसरीन जैसे विस्फोटक पदार्थों के अनुसंधान ने मानव को और भी अधिक विस्फोटकों की खोज की ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन दिया। परन्तु इन सब में एक बात रही ही, रासायनिक ऊर्जा, जिसकी उत्पत्ति परमाणु के वाह्य आवरण के कारण होती है।

नाभि के विघटन से एक और संभावना का उदय होता है: जब एक नाभि टूटती है तो उसमें ऊर्जा का उदय होना चाहिए। हम यह भी आशा कर सकते हैं कि इस नाभि की ऊर्जा का परिमाण वाह्य आवरण से उत्पन्न हुई ऊर्जा की अपेक्षा कहीं अधिक होगा। यहाँ यह न समझना चाहिए कि एक नाभि के तोड़ने से हमें बहुत बड़ी मात्रा

में ऊर्जा मिलेगी। कदापि नहीं, यह मात्रा अत्यल्प होगी। लकड़ी के एक अणु से ऊर्जा की जिस मात्रा का उत्पादन होता है वह एक नाभि के तोड़ने पर निकली ऊर्जा की मात्रा से अत्यधिक होती है। सामान्यतया जब किसी पदार्थ में कोई रासायनिक क्रिया होती है, तो आरम्भ में यह क्रिया कुछ परमाणुओं तक सीमित रहती है, यह तो बिल्कुल स्पष्ट है। लकड़ी को जब आप जलाते हैं तो एकदम ही सारी लकड़ी नहीं जल जाती, शनैः शनैः उसमें अग्नि फैलती है। और इस प्रकार अरबों परमाणुओं में यह रासायनिक क्रिया काम करने लगती है। भले ही एक परमाणु से थोड़ी ऊर्जा का निष्कासन हो, परन्तु कल्पना करो अरबों परमाणुओं की। यद्यपि सन् १९१९ में रदरफोर्ड ने नाभि के विघटन को सिद्ध कर दिया था, तथापि उस समय केवल कुछ ही नाभियों का विघटन संभव हो सका और यह देखा गया कि इस निष्कासित ऊर्जा का परिमाण अपेक्षाकृत अत्यधिक था।

तत्त्वों में यूरेनियम धातु सबसे अधिक भारी होती है और स्थायी रूप से पृथ्वी की सतह पर पाई जाती है। इसकी नाभि में ९२ धनाणु और १४० से लेकर १४६ तक हीनाणु होते हैं। इसकी नाभि का जटिल ढाँचा बहुत अस्थायी है, हर समय टूट जाने का भय रहता है। नाभि के टूटने में कुछ समय लगता है और इस समय को इनकी जीवन-अवधि कहते हैं। यूरेनियम के विघटन का ज्ञान सन् १९३९ में हुआ था तब से आज तक परिस्थिति बहुत बदल चुकी है। यह देखा गया कि यदि हीनाणुओं से यूरेनियम की नाभि पर आक्रमण किया जावे तो उसकी नाभि टूट जाती है। इसका कारण यह बतलाया गया कि हीनाणु स्वयं तो नाभि में चला जाता है और एक विद्युताणु बाहर निकल आता है। इस नई नाभि को उन्होंने नये-यूरेनियम की नाभि कहा। इस नये तत्त्व की परमाणु-संख्या ९२ से अधिक हुई और यह तत्त्व उस सारिणी से बाहर चला गया। यह भी कहा गया कि सामान्यतया ऐसा तत्त्व प्रकृति में अधिक नहीं ठहर सकता। और दूसरी खोजें हुई, और उन खोजों के आधार पर यह सिद्ध किया गया कि हीनाणु के आक्रमण से यूरेनियम की नाभि से लगभग समान मात्रावाली दो दूसरी नाभियाँ बनती हैं और इस विघटन में एक हीनाणु का निष्कासन होता है। ये दोनों नाभियाँ स्वयं अस्थायी होती हैं। इस प्रयोग से ऐसा प्रतीत हुआ कि हीनाणु के यूरेनियम पर आक्रमण से नये-यूरेनियम की उत्पत्ति का विश्वास निराधार था। फिर खोजें हुई, अध्ययन हुआ और मालूम हुआ कि दोनों बातें ठीक हैं। सम-स्थानीय तत्त्वों से हमारा परिचय है। यदि एक तत्त्व के विभिन्न

रूपों में एक ही परमाणु-संख्या हो, और उनकी परमाणु-मात्रा में अन्तर हो तो ऐसे रूपों को उस तत्त्व के सम-स्थानीय कहते हैं। यूरेनियम के दो मुख्य सम-स्थानीयों में अधिकतर पाये जानेवाले सम-स्थानीय की परमाणु-मात्रा २३८ होती है। उसकी नाभि में ९२ धनाणु तथा १४६ हीनाणु होते हैं तथा दूसरे सम-स्थानीय की नाभि में १४३ हीनाणु होते हैं और उसकी परमाणु-मात्रा २३५ होती है। बादवाला सम-स्थानीय बहुत अस्थायी होता है। प्राकृतिक यूरेनियम में यह सौवें भाग से भी कम होता है। **य**^{२३८} से हमारा तात्पर्य यूरेनियम के उस सम-स्थानीन से है जिसकी परमाणु मात्रा २३८ तथा **य**^{२३५} से उस सम-स्थानीय से है जिसकी परमाणु मात्रा २३५ है। **य**^{२३५} में विघटन बड़ी सरलता से होता है। **य**^{२३८} के विघटन में हीनाणु विलीन हो जाता है जिसके कारण **य**^{२३९} की उत्पत्ति होती। इसको नेप्चूनियम कहते हैं। यह अस्थायी होता है और शीघ्र टूट जाता है। इसके विघटन से एक विद्युताणु तथा एक नाभि का उदय होता है। इस नवजात नाभि की परमाणु-संख्या ९३ और परमाणु-मात्रा २३९ होती है। इस नये तत्त्व को नेप्चूनियम कहते हैं जिसमें एक हीनाणु को खपाने की शक्ति होती है जिससे य^{२४०} का निर्माण होता है। **य**^{२४०} में ९३ धनाणु ही होते हैं। **य**^{२४०} से, इसके बिल्कुल अस्थायी होने के कारण, एक विद्युताणु निकल जाता है और प्लुटोनियम नाभि का सृजन होता है जिसमें ९४ धनाणु होते हैं और १४६ हीनाणु। यही नहीं, ऐसी नाभियों की रचना भी हो चुकी हैं जिनमें ९४ से भी अधिक धनाणु होते हैं; **ऐमेरोसियम** में ९५, क्यूरियम में ९६, बर्केलियम में ९७, कैलीफोर्नियम में ९८, ऐंथेनियम में ९९ तथा सैन्टूरियम में १०० धनाणु—पूरे १००। हमने पहिले बताया था कि केवल ९२ तत्त्व हैं और अब बता रहे हैं कि पूरे १०० ! यह क्या हुआ ? कारण यह है कि ये बाद के तत्त्व केवल प्रयोगशाला में ही बनाये जाते हैं—प्रकृति में इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं है। सृष्टिसृजन के आदिकाल में इनका अस्तित्त्व रहा होगा—और इनका विनाश भी इनकी रेडियो-धर्मता के कारण हुआ है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि एक यूरेनियम की नाभि में विघटन की क्रिया हो जावे तो फिर यह विघटन य^{२३५} से चलता हुआ सैन्टूरियम के सृजन तक पहुँच जावेगा।

नाभि के टूटने से ऊर्जा की उत्पत्ति होती है और एक बार नाभि के विघटन से यह क्रिया कई बार स्वयं हो जाती है। एक नाभि के विघटन से केवल ३×१०^{-४} अर्ग इकाई ऊर्जा का विकास होता है, परन्तु यदि एक बार यह क्रिया पदार्थ में फैल

जावे तो य^{२३५} के एक सहस्र ग्राम की विघटन क्रिया से उत्पन्न ताप से १० लाख टन जल में हम १००°C तापमान का अन्तर ला सकते हैं। इसी क्रिया का उपयोग परमाणु बम में किया गया था। जापान के हीरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर गिरे बमों को T.N.T. के २०,००० टन के तुल्य माना गया था। कोयले को जलाने से जो ताप हमें मिलता है उससे ३० लाख गुना ताप हमें यूरेनियम की समान मात्रा के विघटन से मिल सकता है। लगभग डेढ़ पौंड यूरेनियम में $१०^{२४}$ परमाणु होते हैं और इनके विघटन से $३ \times १०^{-४} \times १०^{२४} = ३ \times १०^{२०}$ अर्ग ऊर्जा की प्राप्ति होगी।

यह हुआ परमाणुबम। अब हमने उदजन बम की चर्चा बड़े ज़ोरों से सुनी हैं। उसकी शक्ति की भयंकरता का आपको कुछ अनुमान भी है। हम यह बता चुके हैं कि तत्त्वों की सारिणी में चांदी तक के सब तत्त्व स्थायी हैं और उनकी नाभियों का विघटन एक दुस्साहस है। उदजन की नाभि को विघटित किया गया और उससे बना उदजन बम। उदजन का एक बम लगभग १० हजार परमाणु बमों के समान होता है ! !

३

दिक्काल
(Space-Time)

३·१. (क) आफ़िस में बैठे बाबू साहब अपने चपरासी से कहते हैं कि रमेश को बुलाओ। चपरासी आज ही इस दफ्तर में आया है; उसे यहां का कुछ भी पता नहीं। उसे कुछ पता नहीं कि इस विशाल जनसमुदाय में कौन रमेश है? ख़ैर बेचारे को ढूंढ़ कर लाना होगा—नई-नई नौकरी है और बेरोज़गारी के ज़माने में। हर आदमी से पूछता है कि आप रमेश तो नहीं हैं? यदि हैं तो आपको हमारे साहब बुला रहे हैं। कुछ झुंझला कर और कुछ उसे पागल समझ कर चले जाते हैं। कुछ रमेश नामके सज्जन व्यक्ति हैं या यों कहो कि उसके पागलपन का तमाशा बनाने के लिये उससे कहते हैं कि अच्छा चलो। इन नये साहब को देखते ही बाबू साहब आगबबूला हो जाते हैं—सारी सर—चपरासी ने ग़लती से आपको बुलाया। ऐ चपरासी—अबे ये रमेश नहीं—रमेशचन्द्र गुप्त, दिल्लीवाले। अब चपरासी बाबू साहब से कहता है कि साहब रमेशचन्द्र गुप्त यहां नहीं हैं। मामला समाप्त हुआ।

(ख) कल्पना करो कि संसार के सारे देशों के प्रधान मंत्री एक जगह इकट्ठा हुए हैं। आप जानते हैं कि जवाहरलालजी प्रधान मंत्री हैं। आप जवाहरलालजी से मिलना चाहते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश आप वहां जा कर अपने इस प्रधान मंत्री का नाम भूल जाते हैं? तब क्या करेंगे—सब प्रधान मंत्री हैं—अपनी स्मरण शक्ति को कोसते हुए आप वापस लौट आयेंगे। आधे रास्ते में आपको याद आया कि यह व्यक्ति एशिया

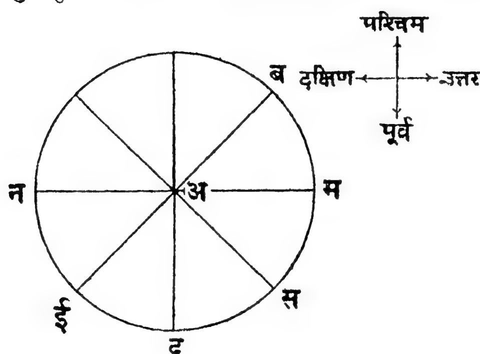
के किसी राष्ट्र का प्रधान मंत्री है। आप प्रसन्न हो गये कि पा लिया। फिर वापस लौट कर आये और लोगों से पूछा; परन्तु मालूम हुआ कि एक नहीं, एशिया के बीस प्रधान मंत्री पधारे हैं। अपना-सा मुंह लेकर फिर चले आये—किसको बुलायें। फिर निराश होकर घर लौट पड़ते हैं, एक गिलास पानी पीते हैं। कुछ थकान कम होती है। इतने में एक बात और याद आई कि यह व्यक्ति एशिया के भारत नाम के राष्ट्र का प्रधान मंत्री है। हिम्मत ने कहा चलो जा कर फिर देखो—परन्तु तर्क ने कहा कि यदि भारत नाम के भी १०-१२ राष्ट्र हुए तब क्या होगा—बैठे रहो, तुम्हारे भाग्यमें इस व्यक्ति से मिलना नहीं है।

(ग) एक बार आदम को स्वप्न में दिखाई दिया कि ठीक ५ गज़ दूर एक छोटा-सा महीन तार रखा है। इस तार का गुण है कि यह सब इच्छाओं को पूरा करेगा। आदम बहुत प्रसन्न हुआ कि अब उस तार से वह फिर स्वर्ग लौट जावेगा। परन्तु वाह रे भाग्य! बेचारे आदम ने अपना सारा जीवन मिट्टी में मिला दिया उस तार के पीछे—चप्पा-चप्पा छान डाला, परन्तु उसे वही तार न मिला—'न खुदा ही मिला न विसाले सनम।' [ये तीनों काल्पनिक रचनाएं हैं]

अब ज़रा सोचिये, चपरासी को रमेश क्यों नहीं मिला; उन सज्जन को नेहरूजी तथा आदम को वह तार आख़िर बात क्या हुई? चपरासी को रमेश मिल सकते थे यदि साहब उनका हुलिया कुछ और बता देते। जैसे गोरा रंग है, मूंछें हैं या उनका चित्र दे देते। जवाहरलालजी से उनकी भेंट हो सकती थी यदि वह भारत नाम याद आने से दुबारा प्रयत्न करते। परन्तु आदम को तार नहीं मिल सकता था। तुम पूछोगे, क्यों? क्या उसने प्रयत्न नहीं किया, क्या वह मिट्टी का बना था? आओ हम इसको समझने का प्रयत्न करें।

पहला प्रश्न तो यह है कि आख़िर वह तार ५ गज़ दूरी पर आदम साहब के सिर से था, या पैर से अथवा उनकी नाभि से। ख़ैर कल्पना करो कि स्वप्न में उन्हें यह भी सुनाई दिया कि यह दूरी उनकी चारपाई के एक कोने से है। चित्र में देखो। 'अ' चारपाई का एक कोना है। वृत्त खींचना तुम जानते हो, बड़ी सरल बात है। मान लो ब स द ई इस वृत्त की परिधि है, अ ब इसका अर्द्धव्यास है ५ गज़ का। अब आप कह उठेंगे कि बस वह तार मिल गया, इसी परिधि पर कहीं होगा। एक-एक बिन्दु को उठा कर देख लो, किसी न किसी के नीचे मिल ही जावेगा। पाठक, यदि मैं कहूं कि इन बिन्दुओं को आप नहीं गिन सकते, ये अनन्त हैं, असंख्य हैं तो आप कहग कि एक वैज्ञानिक ने इन सब नक्षत्रों

की गणना कर ली, इन सब पेड़-पौधों की, वनस्पति की गणना कर ली, रेत के कणों की गणना कर ली ; और तो और महाशय जी, असीम विश्व के परमाणुओं की भी गणना करके रख दी। इन बिन्दुओं की क्या हस्ती है। मुझको तनिक भी विचलित न होते देख कर पाठक तुम झुझला कर कहोगे कि महाशयजी, या तो आप झूठ बोल रहे हैं या ये



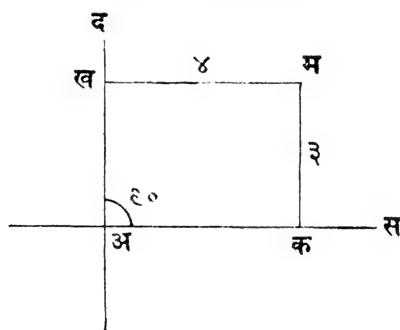
चित्र ३.

वैज्ञानिक झूठे हैं। और देखो मेरा दुस्साहस—यदि मैं फिर भी यही कहूं कि न मैं झूठा हूं और न ये वैज्ञानिक। भले ही आकाश के तारे गिन लिये गये हों, भले ही वनस्पति जगत् की पत्तियां गिन ली गई हों, परमाणुओं की गणना भी सम्भव है, परन्तु पाठक, यह सच है कि इन्सान इन बिन्दुओं की गणना नहीं कर सका, न कर सकता है। यही नहीं, छोटी-से-छोटी रेखा के बिन्दुओं की गणना भी उसकी बुद्धि के परे है—यह बुद्धि की सीमा है—उसकी हार है। अब समझे आप आदम की विवशता—कितना अधूरा वह स्वप्न था! तुम ऐसे स्वप्नों पर कभी विश्वास न करना। यदि तुम्हें ऐसा स्वप्न कभी फिर दिखाई दे तो एक बात और पूछ लेना कि भाग्यवान् किस दिशा में? काश! आदम को यह मालूम होता तो उसे वह तार मिल गया होता! कैसे? मान लो, स्वप्न में उसे मालूम हुआ कि ठीक उत्तर दिशा में। परिधि पर स्थित 'म' बिन्दु 'अ' से ठीक उत्तर दिशा में ५ गज़ दूर है—और ठीक उत्तर में 'अ' से २० गज़ दूर यही अकेला एक बिन्दु है। बस अब क्या था आदम को मिल गया होता वह तार।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदम को दिशा और दूरी मालूम होने पर उस धरातल पर उस बिन्दु-विशेष का ज्ञान हो सकता था। अर्थात् धरातल पर स्थित एक बिन्दु के ज्ञान के लिये तीन बातें होनी चाहिए—वह बिन्दु, जहाँ से आपको दूरी लेनी है

(जैसे चारपाई का एक कोना), दूरी तथा दिशा। एक बात और उल्लेखनीय है। वह यह कि वह बिन्दु जहाँ से हम दूरी मापते हैं, बदल सकता है। चारपाई के कोने से दूरी न मापकर हम उनके केन्द्र से माप सकते थे। दूरी और दिशा का ज्ञान हर हालत में अनिवार्य है। इस बिन्दु को, जहाँ से हमने दूरी नापी है, हम मूल-बिन्दु कहते हैं और इन गुणों को, दूरी तथा दिशा को, हम घात कहते हैं। धरातल पर किसी भी बिन्दु की स्थिति ज्ञात करने के लिये दो घातों की आवश्यकता होती है।

अब हम एक ऐसी ही दूसरी प्रथा का वर्णन करते हैं। 'अ' से होती हुई दो सरल रेखाएं अ स और अ द खींचो। इन दोनों रेखाओं के बीच का कोण समकोण हो। 'म' बिन्दु की स्थिति हम इस प्रकार बता सकते है: अ स के सहारे ४ गज़ चलो और फिर अ द के समानान्तर ३ गज़ चलो; म बिन्दु पर पहुंच जाओगे। जब हम म (४, ३) लिखते हैं तो हमारा 'म' बिन्दु से अर्थ होता है जिसकी स्थिति अ द रेखा से ४ तथा

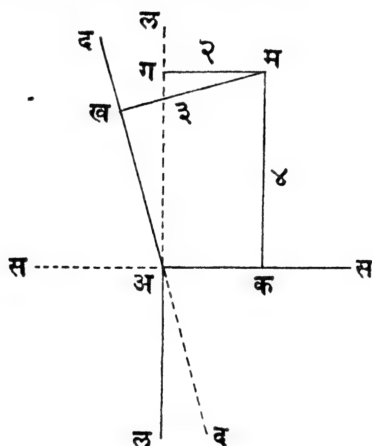


चित्र ४.

अ स रेखा से ३ गज़ होती है। यह केवल एक ही बिन्दु होगा। वास्तव में यह दूरीयाँ हमें 'म' से अ स तथा अ द पर लम्ब डालने से उपलब्ध होती हैं। अ क तथा अ ख **नियामक** कहलाते हैं। अ स तथा अ द इन दो रेखाओं को हम अक्ष कहते हैं; अ को मूल बिन्दु और अ क तथा अ ख को क्रमशः स-नियामक तथा द-नियामक कहते हैं। एक इच्छा और प्रकट की हमने यहां पर कि इन दोनों रेखाओं का कोण समकोण होना चाहिए। आप पूछेंगे कि ऐसा क्यों? हम तो ९०° का कोण लेंगे। मैं पहिले ही कह चुका हूं कि भाई, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। आप कोई भी कोण ले सकते हैं—हां, जब कभी भी आप समकोण न लेकर कोई और कोण लें तो आपको उसका उल्लेख करना

होगा। कुछ परम्पराएं होती हैं जो प्रत्येक विज्ञान में मान्य होती हैं—उन्हीं में से एक यह भी है कि नियामक की प्रथा में हम अक्षों के बीच का कोण ९०° लेते हैं और उसका उल्लेख नहीं करते।

संसार में केवल कल्पना से ही धरातलों का निर्माण होता है, उनकी पार्थिव सत्ता कुछ नहीं हैं। महीन से महीन काग़ज़ में भी कुछ न कुछ मोटाई तो होती ही है। मान



चित्र ५.

लो आदम का तार पृथ्वी में धरातल से २ गज नीचे था। 'म' बिन्दु पर पहुंचने पर भी आदम को वह तार न मिल सकता था। 'म' के नीचे आये बिन्दुओं को वह नहीं गिन सकता था। उसको यह नहीं मालूम था कि 'म' से २ ग़ज़ नीचे वह तार छिपा हुआ है। अर्थात् ऐसी अवस्था में यह परमावश्यक था कि आदम साहब को यह मालूम होता कि 'अ स' के किनारे ४ गज़, 'अ द' के किनारे ३ गज़ तथा 'अ ल' के किनारे २ गज़ चलना होगा। चित्र में इसका निरूपण किया गया है। यहां भी हमारी अक्षें एक दूसरे पर लम्ब है; यद्यपि काग़ज़ पर उनका इस प्रकार दिग्दर्शन असम्भव है। इस प्रकार इस बिन्दु की स्थिति को हम म (४,३,२) से प्रकट करते हैं।

अब चित्रों को देखो। प्रत्येक में 'अ' को मूल बिन्दु माना गया है। पहिले चित्र में केवल ५ कहने मात्र से 'म' की स्थिति का ज्ञान हो जाता है। दूसरे में इससे काम नहीं चलता। वहाँ हमें (४,३) कहना पड़ता है। तीसरे में (४,३,२) कहने से काम चलता

है। (४,३,०) का क्या अर्थ है। यही न कि 'अ स' के किनारे ४ गज़, 'अ द' के किनारे ३ गज़ तथा 'अ भ' के किनारे बिल्कुल नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी भी बिन्दु की स्थिति का ज्ञान करने के लिये तीन घातों का होना परमावश्यक है। ऐसी ही बिन्दुओं की अविरतता को देश कहते हैं अर्थात् देश इन्हीं तीन घातों की अविरत धारा को कहते हैं।

३·२. आप पूछेंगे "परन्तु विश्व? क्या हम चांद की स्थिति इन तीन घातों से दे सकते हैं? घूमते हुए नक्षत्रों की स्थिति ज्ञात करने के लिये आपके पास क्या साधन है?"

आपका प्रश्न बहुत तर्कपूर्ण है। जिन स्थानों एवं बिन्दुओं की हमने कल्पना की उनको हमने स्थिर माना था—अस्थिर नहीं। लखनऊ से देहली को रात के ९ बजे एक गाड़ी जाती है, बीच में हरदोई, शाहजहाँपुर, बरेली, मुरादाबाद तथा गाजियाबाद स्टेशन पड़ते हैं। दो दोस्त थे—एक लखनऊ में रहता था और एक बरेली में। लखनऊ वाले दोस्त ने बरेली वाले दोस्त को अपने दिल्ली जाने की सूचना दी और आग्रह किया कि वह स्टेशन पर मिल ले। वह साहब अपने दोस्त से मिलने स्टेशन पहुंचे। परन्तु न तो उन्हें गाड़ी मिली और न दोस्त। बहुत-सी गाड़ियां आईं, लखनऊ से भी आई, परन्तु दोस्त साहब ही न मिले। बड़ी हैरानी और चिन्ता हुई—आखिर दोस्त साहब का क्या हुआ? उनको ठीक उस स्थान का पता मालूम था जहां उनके दोस्त साहब आनेवाले थे। आदम के तीनों नियामकों का बोध था और फिर दोस्त न मिले। आखिर जब उन्होंने अपनी यह मुसीबत एक साहब को सुनाई तो वह बोले—यार, तुम भी खूब हो! तुम लेट हो गये थे। गाड़ी तो चली गई और अब आप देख रहें हैं अपने मित्र की राह। जाओ और आराम से सो रहो।

वे कुछ समझे कुछ न समझे और अपने घर चले गये। घर जाकर सोचा कि आखिर हुआ क्या। बहुत सिर खपाने पर उन्हें मालूम हुआ कि भाई जान ने हमें समय नहीं बताया था। इसका ज्ञान अति आवश्यक था उनसे मिलने के लिये। तीन बातों के जानने से ही काम नहीं चलता, अपितु चार बातों का जानना अति आवश्यक है। जब वस्तुएं अस्थिर हों तो उनकी स्थिति के ज्ञान के लिये काल अथवा समय का ज्ञान भी परमावश्यक है। अतः काल भी एक घात हुआ और इस प्रकार इस गतिशील विश्व में वस्तुओं की स्थिति का ज्ञान चार घातों से होता है।

विश्व देश तथा काल की अविरतता है। देश में तीन घात होते हैं तथा काल में एक। अतः विश्व चार घातों की अविरत धारा को कहते हैं।

३·३. **परिभाषाएं**—हम देश का उल्लेख पहिले भी कर चुके हैं और अपने दैनिक जीवन में कई बार इसका विवरण करते हैं। आज का विज्ञान इस बात से भलीभाँति परिचित है कि देश और काल के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। मुख्य रूप से चार अर्थ 'देश' और 'काल' शब्दों को दिये जाते हैं।

मानसिक (Conceptual) देश. इसका उदाहरण है ज्यामिति का देश। इसका कोई अलग से अस्तित्त्व नहीं होता; इसका अस्तित्त्व तो विचारक के मस्तिष्क में होता है और वह भी उस समय जब विचारक इसका विचार करता है। यह विचारक के ऊपर निर्भर होता है कि वह यूक्लिड्यन देश का मनन करे, या किसी और का; चाहे वह एकघातीय देश का निर्माण करे अथवा बहुघातीय देश का। इसका अस्तित्त्व उसी समय समाप्त हो जाता है जब विचारक इस विषय का मनन बन्द कर देता है।

दृश्य देश. इसका उदाहरण है वह देश जिसका अनुभव हमारी चेतना करती है। जिसका अनुभव हम मस्तिष्क से नहीं, वरन् अपनी ज्ञानेन्द्रियों से करते हैं। हम किसी वस्तु को छूते हैं और हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ तुरन्त हमारे मस्तिष्क में यह पैग़ाम पहुंचा आती हैं कि इस वस्तु में कुछ आकार है। जब हम किसी वस्तु के समुदाय को देखते हैं तो हमारी दृष्टि हमें बताती है कि उनमें कुछ सम्बन्ध है, कोई आगे है कोई पीछे, कोई ऊपर कोई नीचे। इस प्रकार हम यह सोचते हैं कि वस्तुओं का समूह एक क्रम में रखा है और इस क्रम में तीन घात हैं। इस देश में और Conceptual देश में इतना ही अन्तर है कि Conceptual देश की अनुभूति विचारक केवल मस्तिष्क से ही कर लेता है और जब मस्तिष्क में विचार समाप्त हो जाता है, तो वह देश भी समाप्त हो जाता है। दृश्य देश में मस्तिष्क के अतिरिक्त दृष्टि की भी आवश्यकता है और जैसे ही हमने देखना बन्द किया इस दृश्य देश का भी लोप हो गया। सुदूर स्थित वस्तु देखने पर द्विघातीय ही प्रतीत होती हैं। प्रातः निकलता हुआ सूर्य केवल एक वृत्त दिखाई देता है। यही कारण है कि पूर्वजों ने नक्षत्रों का प्रदर्शन गोले के द्विघातीय पृष्ठ पर किया था। हमें पिंड के तीन घात उस समय प्रतीत होते हैं जब या तो पिंड हमारे निकट हों, या पिंड एक दूसरे के पीछे चल रहे हों अथवा दृष्टि के अतिरिक्त दूसरी इन्द्रिय का प्रयोग किया गया हो।

भौतिक देश. Conceptual एवं दृश्य देश दोनों निजी देश हैं। एक विचारक का निजी देश है और दूसरा दृश्य का। इनके अतिरिक्त एक और प्रकार का देश है जो भौतिक-शास्त्र एवं Astronomy का है। विज्ञान इस बात से परिचित है कि वाह्य

जगत् में होनेवाली घटनाओं का कारण यह है कि पार्थिव वस्तुएं एक सर्वसाधारण के देश में स्थित हैं, इस देश में वे गतिशील हो सकती है और प्रत्येक द्रष्टा के लिये यह देश एक-सा है। इस जनसाधारण के देश को हम भौतिक देश कहते हैं।

निरपेक्ष देश. यह भौतिक देश का ही एक विशेष अंग है। इसका निर्माण न्यूटन ने किया था। इसी देश के आधार पर न्यूटन ने अपने गति-विज्ञान को विकसित किया। इस आधार पर स्थित न्यूटन का यह गति-विज्ञान आइन्सटीन के समय तक रहा। जब हम यह कहते हैं कि एक रेलगाड़ी लखनऊ से दस मील दूर जा चुकी है, तब हमारा तात्पर्य यह है कि गाड़ी पटरियों पर लखनऊ से आगे की ओर दस मील जा चुकी है, जैसे १०५ मील के चिह्न से ११५ मील के चिह्न तक। इसी कालावधि में, पृथ्वी, जिसके ऊपर ये रेल की पटरियाँ है, अपने कक्ष के चारों ओर घूमने के कारण इन पटरियों को पूर्व की ओर १०० मील ले गई हों और साथ ही साथ उतनी ही अवधि में सूर्य के चारों ओरवाले पथ पर १०,००० मील ले गई हों, और सूर्य पृथ्वी को अपने साथ लेकर निकट के नक्षत्र के करीब १००,००० मील चला गया हो तथा अपने पास के नक्षत्रपुञ्ज के नज़दीक १,०००,००० मील, चला गया हो। यदि इनमें एक गति सत्य है तो दूसरी भी, परन्तु एक दूसरी की अपेक्षा रखती है। १०० मीलवाली अपने चारों ओर के वातावरण की ; १०,००० मीलवाली सूर्य की ; और १,०००,००० मीलवाली किसी नक्षत्रपुंज की। कोई भी देश निरपेक्ष नहीं हैं।

यह क्रम अनन्त भी हो सकता है। परन्तु न्यूटन ने ऐसा मानने से इन्कार कर दिया। उसने लिखा है: "सम्भव है, सुदूर किसी कोने में कोई पिंड निरपेक्षता से शान्तिमय हो, गतिहीन हो। परन्तु इस क्षेत्र में बैठकर उस सुदूर के पिंड को जानना असम्भव है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि निरपेक्ष स्थिरता का ज्ञान सापेक्ष क्षेत्रों में बैठकर नहीं हो सकता।" इसी सिलसिले में उसने फिर लिखा है: "सम्भव है, कोई भी पिंड वास्तव में गतिहीन न हो।" इसके उपरान्त एक नये सिद्धान्त ने देश में ईश्वर की सार्वभौमता की घोषणा की और इसको निरपेक्ष तथा स्थिर माना।

वास्तविकता यह है कि साधारण जन देश की चर्चा प्रति दिन करते हैं। अमुक के पास इतनी जगह (देश) है और अमुक के पास इतना क्षेत्र (देश)। परन्तु देश क्या है, इस पर कभी भी विचार नहीं होता। जनसाधारण में यह एक ऐसी धारणा बन गई है, जिस पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरी धारणाओं की भांति देश की धारणा का भी एक इतिहास है। होमर के काव्य में इसकी कोई चर्चा

नहीं है और यहाँ तक कि बाद तक के यूनानी दर्शन में भी वह धारणा नहीं जो कांट की थी। वास्तव में देश की धारणा की आवश्यकता हमारे बौद्धिक विकास का परिणाम हैं।

३.४. जिस प्रकार देश के चार प्रकार बतलाये गये हैं उसी प्रकार काल के चार अर्थ लगाये जाते हैं--

मानसिक Conceptual काल. ठीक Conceptual देश की भांति इसका अस्तित्त्व भी विचारक के मस्तिष्क में रहता है। गति-विज्ञान में जो काल का अथ है और उन सब प्रयासों में, जिनमें परिवर्तन एवं गति का अध्ययन होता है इसी प्रकार का काल अभिप्रेत होता है। साधारण सी बात है कि इसका एक घात होता है, परन्तु कुछ लोगों ने इसे बहुघातीय भी माना है।

दृश्य काल. यह एक द्रष्टा विशेष का अपना निजी अनुभव है। द्रष्टा की चेतना में इसका वास होता है और जैसे ही चेतना का लोप होता है, इसका भी लोप हो जाता है। अनुभव हमें यह बतलाता है कि दृश्य कार्य में एक क्रमबद्धता है और यह कार्य एक के बाद दूसरा होता है। इस प्रकार यह दृश्य काल भी एकघातीय है।

भौतिक काल. यह भौतिक विज्ञान एवं खगोल विज्ञान में प्रयुक्त होता है। भौतिक देश की भाँति यह भी जन-काल है, निजी नहीं। विज्ञान इस मान्यता को अस्वीकार करने में कोई तर्क नहीं पाता कि सब घटनाएं एकरेखीय क्रम में रखी जा सकती हैं और इस क्रम में इन घटनाओं का स्थान उनके काल को निर्धारित कर सकता है। इस प्रकार काल-मापन की अनन्त विधियाँ हुई, जिसके कारण इन सब में हमें एक विधि को अपनी सुविधा के अनुसार चुनना है जिससे काल का मापन हो सके। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि जब पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर लगा लेगी, तब हम उतने काल को इकाई मानेंगे, तो हमारे हाथ काल-अंकन का एक साधन आ जाता है। हम इसे एक वर्ष कहते हैं। परन्तु यह एकांक मानवजीवन की अपेक्षा अधिक बड़ा है। हम एक और छोटे एकांक की खोज करते हैं। इसके लिए हमारे पास बहुत साधन हैं। बहुत पदार्थो में कंपन होता है जिसकी वर्ष में आवृत्तियों की संख्या बहुत बड़ी है। यह कंपन हमारे जीवन और वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिये बहुत उपयुक्त हैं।

निरपेक्ष काल. निरपेक्ष देश की भांति इस निरपेक्ष काल की भी धारणा है। निरपेक्ष से हमारा मतलब यह है कि गति के आधार पर बनी घड़ियों में दो स्थानों (देश) में एक ही कालांकन होना चाहिए। न्यूटन ने काल को निरपेक्ष ही माना था और

उसकी धारणा के अनुसार 'काल सत्य है, निरपेक्ष है और इसकी धारा का प्रवाह स्वतन्त्र गति से अविच्छिन्न है।'

३.५. **देश और काल के अर्थ.** जो वस्तु अपनी होती है उसे समझने में कोई दिक्कत नहीं होती। परन्तु जो वस्तु अपनी नहीं होती उसे समझना स्वभावतः कठिन ही है। Conceptual एवं दृश्य देश तथा काल हमारे अपने हैं। हमारी चेतना में ही उनका अस्तित्व है, और हमारी चेतना के साथ ही वे लुप्त भी हो जाते हैं। परन्तु भौतिक एवं निरपेक्ष देश तथा काल के विषय में भिन्न-भिन्न मत अब तक प्रचलित हैं। वे अपने निजी नहीं हैं, अतः उनको समझना कुछ कठिन ही प्रतीत होता है। विज्ञान ने प्रकृति को उसके सत्य रूप में ही देखने का प्रयास किया है, और यह कल्पना की है कि हमारा बोध वाह्य वस्तुओं के कारण होता है। आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों तथा कण-कण में व्याप्त परमाणुओं से ही हमें ज्ञान मिलता है। और इनका अस्तित्त्व हमारे मस्तिष्क के होने न होने पर निर्भर नहीं करता, वह मस्तिष्क से निरपेक्ष है। यदि हमारा मस्तिष्क समाप्त हो जाता है अथवा अपना काम करना छोड़ देता है तो भी यह नक्षत्रमंडल बना रहेगा और दूसरे लोगों को दिखाई देता रहेगा। इस धारणा को आधार मानकर हम यह कह सकते हैं कि देश और काल का भी उसी प्रकार वास्तविक अर्थ है जिस प्रकार इन दूसरी भौतिक वस्तुओं का। मस्तिष्क के आविर्भाव से पहिले भी इन भौतिक पिंडों का अस्तित्त्व था और मस्तिष्क के लुप्त होने पर भी इनके अस्तित्त्व पर कोई आंच नहीं आयेगी।

यह है एक मत। दूसरा मत भी साथ साथ चलता रहा। कुछ लोगों ने इस पहिले मत की सार्थकता से इन्कार कर दिया। उनका मत है कि आत्मज्ञान के अतिरिक्त हमें और किसी का ज्ञान नहीं हो सकता। जो हमारे मस्तिष्क में हैं, केवल वही हम जान सकते हैं; मस्तिष्क के बाहर की बातों के विषय में केवल अनुमान कर सकते हैं, और ये अनुमान अधिकतर असत्य होते हैं। बुद्धिवादी दार्शनिकों का यह मत रहा है कि जो मस्तिष्क के बाहर है उसका अस्तित्त्व हो ही नहीं सकता। संसार में चेतना मूलभूत है और जिन्हें हम वास्तविक वस्तु कहते हैं वे वस्तुतः या तो हमारे मस्तिष्क के सृजन हैं या दूसरों के। जब हम इन वस्तुओं को सत्य नहीं मानते तो देश और काल, जिनमें हम इन वस्तुओं का स्थान निर्धारित करते हैं, कैसे सत्य हो सकते हैं? Conceptual और दृश्य देश तथा काल की सत्यता पर तो कोई सन्देह हो ही नहीं सकता। हां, भौतिक एवं निरपेक्ष देश तथा काल की सत्यता केवल इन्हीं Conceptual

एवं दृश्य देश तथा काल के दूसरे रूप हैं। किन्तु इससे पहिले का मत ठीक इसके विरुद्ध था जिसमें भौतिक एवं निरपेक्ष देश तथा काल की सत्यता असंदिग्ध थी और Conceptual एवं दृश्य देश तथा काल केवल इन सत्यताओं की छाया माने गये थे।

देश तथा काल की प्रकृति को जानने के विषय में ठोस काम सबसे पहिले कुसा के निकोलस (१४०१-१४६४) ने किया। उसका विचार था कि देश और काल तो हमारे मस्तिष्क की उपज हैं और इस प्रकार वे अपने स्रष्टा मस्तिष्क से तुच्छ हैं। इसके उपरान्त बर्नो ने यह विचार रखा कि सदैव घूमनेवाले सूर्य और ग्रहों के बीच, जहां कोई भी स्थिर केन्द्र नहीं है, ऊपर-नीचे, गतिशील, गतिहीन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। इस प्रकार सब गति-सापेक्ष है—किसी न किसी की अपेक्षा चाहिए ही। निरपेक्ष देश तथा काल तो हमारे मस्तिष्क की उपज मात्र हैं। लेबिज का भी यही मत था कि देश तथा काल का अस्तित्त्व तो वस्तुओं पर निर्भर है, उनका अपना कोई अस्तित्त्व नहीं है; देश वस्तुओं के क्रम को कहते हैं और काल घटनाओं के क्रम को। इन सब विचारकों का एक ही मत रहा कि देश तथा काल केवल Conceptual और दृश्य हैं; भौतिक देश तथा काल का कोई अस्तित्त्व नहीं हैं। और निरपेक्ष देश तथा काल पर तो इन विचारकों ने ध्यान ही देने से इन्कार कर दिया।

परन्तु न्यूटन ने अपना अलग ही मत रखा और पूर्ण विश्वास से यह घोषणा की कि देश और काल का अपना अस्तित्त्व है, वह हमारी चेतनता पर निर्भर नहीं करता और साथ-साथ यह मान्यता भी रखी कि निरपेक्ष देश एवं काल का ज्ञान भी सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्भव है।

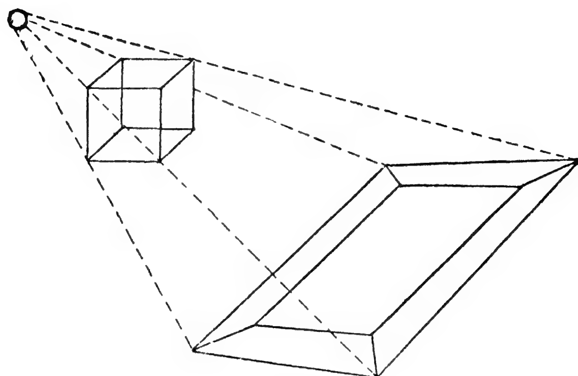
कांट के सामने भी यही प्रश्न आये—देश और काल क्या हैं? क्या उनका वास्तविक अस्तित्त्व है? या केवल देश और काल वस्तुओंके बीच सम्बन्ध निर्धारित करते हैं? और इस प्रकार क्या देश और काल का ज्ञान उस दशामें भी सम्भव है जब वस्तुएं दिखाई न दें या केवल उसी समय जबकि वस्तुएं दृष्टिगोचर हों; अर्थात् क्या वे केवल मस्तिष्क की उपज हैं? कांट ने देश और काल को चार भागों में नहीं बांटा। उसकी धारणा थी कि देशका अपना कोई अस्तित्त्व नहीं होता; वह वस्तुओं के क्रमनिर्धारणके लिये मस्तिष्क द्वारा उत्पादित एक ढांचा मात्र है। देश का ज्ञान हमें अपने वाह्य अनुभव से नहीं हो सकता, यह तो स्वयं मस्तिष्क से होता है और प्रत्येक दृश्य वस्तुके लिये एक आधार बनाता है। काल भी इसी प्रकार हमारे वाह्य अनुभव की देन नहीं है। वह हमारी मानसिक क्रियाओं का परिणाम है।

३·६. क्या देश तथा काल परस्पर स्वतंत्र हैं. कांट को इस बात का ज्ञान नहीं था कि प्रकाश को देश से होकर जाने में समय लगता है। डेन्मार्क के प्रसिद्ध ज्योतिपिज्ञ ने यह सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश को देश से होकर जाने में समय लगता है। Jupiter के चारों ओर कई चन्द्रमा चक्कर लगाते हैं। यदि एक चन्द्रमा की एक परिक्रमा की अवधि एक बार ज्ञात कर ली जावे तो भविष्य में आगे की अवधि ज्ञात की जा सकती हैं। रोमन ने एक ऐसी समय-सारिणी बनाई थी। परन्तु जब उसने अपनी सारिणी की परीक्षा की तो वह ठीक न उतरी। जब ज्यूपिटर पृथ्वी से अधिक दूर होता तो वह अवधि बढ़ जाती और जब ज्यूपिटर निकट होता तो वह अवधि घट जाती। इसका कारण उसमें प्रकाश की सीमित गति है, और इन अवधियों में परिवर्तन का कारण यह है कि प्रकाश को ज्यूपिटर से पृथ्वी पर आने तक समय लगता है। इस तथ्य की सत्यता को ब्रेडले ने सन् १७२५ में सिद्ध किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि देश है और वाह्य वस्तुओंका ज्ञान हमें करना है तो देश और काल को स्वतंत्र मानने पर हमें यह ज्ञान मिलना असम्भव है। बिना काल के आप देश का अनुभव नहीं कर सकते और बिना देश के काल का अनुभव असम्भव है। देश और काल की एकता अविभाज्य है।

काल चतुर्थ घात है. देश-काल की एकता स्वीकार की जा चुकी है। इससे पहिले हम यह कह चुके हैं कि काल चतुर्थ घात है जो वस्तुओंके काल-स्थान के निर्धारण के लिये आवश्यक हैं। आप स्टेशन पर खड़े रहिए, परन्तु यदि गाड़ीके समय पर नहीं पहुचेंगे तो गाड़ी आपको नहीं मिलेगी। काल की इस चौथे घात का विचार बड़ा आश्चय-जनक और रहस्यमय प्रतीत होता है। आइए, हम भी उसकी कल्पना तो कर ही लें। जब हम किसी वस्तु का चित्र लेते हैं तो उसे द्विघातीय बनाते हैं, त्रिघातीय नहीं। हर वस्तु की छाया द्विघातीय होती है। एक बहुत महीन काग़ज की छाया को हम इस प्रकार भी बना सकते हैं कि वह केवल एक रेखा ही प्रतीत हो। चित्र ६ में हम एक त्रिघातीय घन की छाया ले रहे हैं। एक समतल पर रहनेवाला द्विघातीय जीव इस छाया को देखकर यह अनुमान लगायेगा कि इस वस्तुमें ८ कोण तथा १२ भुजाएं हैं। अब जब हम वस्तुएं देखते हैं तो कल्पना करते हैं कि ये उस चतुर्घातीय वस्तु की छाया मात्र हैं जो हमें इस त्रिघातीय संसारमें दृष्टिगोचर हो रही है। जिस प्रकार वह द्विघातीय जीव अपनी ज्ञानेन्द्रिय से इस त्रिघातीय वस्तु का अनुभव करनेमें असमर्थ है, उसी प्रकार हम त्रिघातीय जीव भी उस चतुर्घातीय वस्तु को न देखकर उसकी छाया

मात्र से सन्तुष्ट हैं। पर यह समस्या तब बिल्कुल सरल हो जाती है जब हम यह मानते हैं कि चौथा घात देश का नहीं, वरन् काल का है। यदि हम ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि



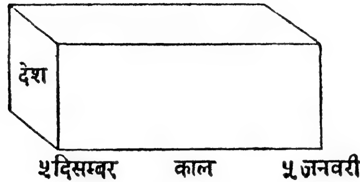
चित्र ६.

प्रत्येक भौतिक वस्तु में चार घात होते हैं, तीन देश के और एक काल का। जिस क़लम से आप लिखते हैं उसमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, तथा काल के चार घात हैं। काल का घात हम उस समयसे गापते हैं जबसे वह बना और जब वह समाप्त हुआ। आप कहेंगे कि उसे हम नाप ही नहीं सकते—न तो यह मालूम कि यह कब बना और न यह कि वह कब समाप्त हो जावेगा।

परन्तु एक बात अवश्य है कि देश के तीनों घातों की एक इकाई है, और काल की दूसरी—काल की इकाई घड़ी से मापी जाती है। एक और बात विभिन्नता की है। आप देश में आगे पीछे, ऊपर नीचे जा सकते हैं; परन्तु काल में नहीं। भूत में जाने की कल्पना भी आप नहीं कर सकते। तब भी हम काल को चतुर्थ घात मान सकते हैं।

अब हमारे लिये एक चतुर्थ घात का पिंड क्या है? एक त्रिघातीय पिंड, जो कुछ समय से इसी दशा (देशीय) में हैं, हमारे लिये चतुर्थघातीय पिंड है। मान लो, आपने १२ किनारोंवाला एक बक्सा ५ दिसम्बर को बनाया और ५ जनवरी को उसे तोड़ डाला। तो इस बक्से का प्रत्येक कोना काल की दिशा में एक माह बढ़ा हुआ होगा। इस प्रकार बक्से के ८ कोने एक मास के काल की अवधि में ८ भुजाएं बनायेंगे, १२ उसमें आदि में थीं और १२ उसमें अन्त में होंगी। अतः इस चतुर्घातीय आकार में ३२

किनारे (भुजाएँ) होंगे। नीचे हम द्विघातीय एक आयत को काल में बढ़ाते हैं—४ कोने वाले और ४ किनारेवाले आकार मे काल का घात बढ़ जाने से १२ भुजाएँ और ८ कोण हो गये।



चित्र ७.

दुर्भाग्य से हम इस त्रिघातीय देश में चार घातों का कोई पिंड बना नहीं सकते —ऐसा पिंड जिसको हमारी ज्ञानेन्द्रिय देख सकें अथवा अनुभव कर सकें।

अब हम फिर देश व काल की एकता पर आते हैं। क्या हम देश व काल की एकता का इस प्रकार विभाजन कर सकेंगे कि यह विभाजन वैयक्तिक दृष्टि पर निर्भर न करे? यदि ऐसा हो जावे तो हम न्यूटन के निरपेक्ष देश तथा निरपेक्ष काल को स्वीकार करेंगे। और यदि ऐसा नहीं होता तो उससे हम यह सिद्ध नहीं कर सकते कि निरपेक्ष देश तथा काल का अस्तित्त्व ही नहीं है, केवल इतना ही सिद्ध कर सकते हैं कि अभी तक देश और काल की निरपेक्षता सिद्ध नहीं हो सकी।

काल को वस्तुजगत् का चतुर्थ घात मानकर हम एक बहुत कठिनाई में पड़ जाते हैं। जब हम लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई मापते हैं तो एक ही इकाई का प्रयोग करते हैं, परन्तु काल की अवधि न तो फुटों में और न इंचों में मापी जा सकती है। हमें दूसरी इकाई, घंटा अथवा सेकिंड का उपयोग करने के लिये विवश होना पड़ता है। तो फिर उनमें किस प्रकार की तुलना की जावे? यदि अब हम एक चतुर्घातीय घन की कल्पना करें, तो उसकी लम्बाई १ फुट, चौड़ाई १ फुट तथा ऊँचाई १ फुट लेंगे। परन्तु काल की कितनी इकाई लें कि हमारा घन चतुर्घातीय हो जावे? १ घंटा लें, १ मिनिट लें या १ माह? १ घंटा और १ फुट में कौन अधिक है? आरम्भ में सोचने पर तो यह समस्या अटपटी सी लगती है? परन्तु क्या आप भूल गये कि आप स्वयं कहते हैं कि अमुक के घर का रास्ता बस से १५ मिनिट का है? लखनऊ से दिल्ली का रास्ता रेलगाड़ी से १० घंटे का है। इन दोनों उदाहरणों में हमने रास्ते के परिमाण को काल

की इकाइयों में मापा है। अपने साधारण जीवन में हमने देश-काल की समानता को स्वीकार कर रखा है, परन्तु जब यही मान्यता एक दूसरे रूप में आती है तो हमें वह अटपटी मालूम देती है। यह ठीक वैसी ही बात है कि दो और दो चार होते हैं और ३ बार दो दो जोड़ने से छः—इसे तो आप अपने जीवन में सहर्ष स्वीकार करें और जब कोई आपसे यह आकर कहे कि २ और २ का गुणा ४ और २ और ३ का गुणा ६ होता है, तब आप उसकी ओर कौतूहल का भाव प्रदर्शित करें। लखनऊ से दिल्ली की ३०० मील दूरी को १० घंटे की समानता प्रदान करने में हम सब हर्षित होते हैं और जब इसी तथ्य को कहें कि देश और काल समान है, तब आप हम चौंक पड़ते हैं! हो सकता है कि इस धारणा को स्वीकार करने का कभी आपको अवसर ही न आया हो।

इस प्रकार यदि हम किसी 'वेग' को प्रमाण मान सकें तो हम देश और काल की इकाइयों में पारस्परिक सम्बंध स्थापित करने में सफल हो सकेंगे। यह भी स्पष्ट है कि यह 'वेग' ऐसा होना चाहिए कि वह मानसिक एवं भौतिक अवस्थाओं से स्वतंत्र हो। इस प्रकार का एक वेग अब तक विज्ञान को ज्ञात है। वह है 'प्रकाश का वेग'। इसका हम पहिले ही वर्णन कर चुके हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक फीज़ो ने इस वेग का मान १,८६,००० मील प्रति सेकिंड निकाला था। नक्षत्रों के बीच की दूरियों को मापने के लिये यह प्रकाश का वेग बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन दूरियों को मीलों में लिखने से बहुत असुविधा होती थी—एक-एक दूरी को लिखने के लिये पृष्ठों की आवश्यकता होती थी। इस प्रकार जब एक ज्योतिषज्ञ यह कहता है कि एक नक्षत्र की दूरी ५ प्रकाश-वर्ष है तब उसका अभिप्राय वैसा ही है जैसा कि हमने कहा था कि लखनऊ दिल्ली का अन्तर १० घंटे है। जिस प्रकार रेलगाड़ी को लखनऊ से दिल्ली पहुंचने में १० घंटे लगते हैं उसी प्रकार प्रकाश को उस नक्षत्र से हमारे पास तक आने में ५ वर्ष लगेंगे। एक प्रकाश-वर्ष में ५,८७९,०००,०००,००० मील होते हैं। इसका उलटा भी हम ले सकते हैं, अर्थात् हम प्रकाश-मील को भी इकाई मान सकते हैं। एक 'प्रकाश-मील' से हमारा प्रयोजन उस कालावधि से है जो प्रकाश को एक मील चलने में लगेगी। इस प्रकार हमारा एक प्रकाश-मील ०·००००५४ सेकिंड के तुल्य होता हैं। इसी प्रकार एक प्रकाश-फुट का मान ०·०००००००११ सेकिंड होता है। अतः यदि हमें एक चतुर्घातीय घन की कल्पना करनी है तो उस घन की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई प्रत्येक १ फुट होगी

और उसके काल के घात का मान ०·०००००००००१ सेकिंड होगा।

३·७. **चतुर्घातीय दूरी.** यह तो हमने मान लिया कि देश-काल की एकता अविभाज्य है, और उनकी इकाइयों में भी समानता है। अब एक दूसरा प्रश्न उठता है। चतुर्घातीय देश-काल की अविरतता में दो बिन्दुओं की दूरी का क्या अर्थ है? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस अविरतता का प्रत्येक बिन्दु हमारे जीवन की घटनाओं का निर्धारण करता है। घटना का हम इस प्रकार उदाहरण देते हैं:—

१. लखनऊ में गांधी-मार्ग पर बाई ओर ५३ नम्बर मकान की दूसरी मंजिल में १६ अगस्त, सन् १९५५, को संध्याके पांच बजे आग लग गई।

२. उसी दिन संध्याके ५ बजकर १५ मिनट पर लखनऊ में गौतम बुद्ध-मार्ग पर दाई ओर मकान न० ५५ की तीसरी मंजिल में एक नर-हत्या हो गई थी।

इन दोनों घटनाओं के स्थान में एक मील का अन्तर है (मान लिया गया है) और समयके अनुसार १५ मिनट का। पाइथागोरस के Theorem के अनुसार तो देश के तीन घातों के परिमाण में एक सम्बन्ध होता है, (पहिले उल्लेख हो चुका है), तब यदि काल को चौथा घात बनना है तो देश-काल के चार घातों में भी एक सम्बन्ध होना चाहिए। हम देश के तीन घातों के सम्बन्ध को एक बार फिर दोहराते हैं। यदि दो बिन्दुओं के देशीय नियामक (x_1, y_1, z_1) तथा (x_2, y_2, z_2) हों तो उनके बीचकी दूरी

$$\sqrt{(x_2-x_1)^2+(y_2-y_1)^2+(z_2-z_1)^2}$$

होगी। अर्थात् देश के बिन्दुओं की दूरी का मापन एक संख्या कर सकती है। देश-काल के बिन्दुओंकी दूरी का माप भी एक अकेली संख्यासे ही होना चाहिए और पाइथागोरस का प्रमेय चतुर्घातीय दूरी के लिये सत्य होना चाहिए।

यह सिद्ध हो चुका है कि पाइथागोरस के प्रमेय से चतुर्घातीय दूरी का ज्ञान एक अकेली संख्या द्वारा सम्भव है और घटनाओं के भौतिक सम्बन्ध में इसका बहुत महत्त्व है। साथ-साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार देश के तीनों घातों की दूरियों की इकाइयां समान होती हैं उसी प्रकार देश-काल की दूरियों के बीच सम्बन्ध के लिये देश और काल की अलग-अलग दूरियों की इकाइयां भी एक ही होनी चाहिए। १५ मिनट ८००,०००,०००,००० प्रकाश-फुट के समान होते हैं। अब यदि हम पाइथागोरस की Theorem का प्रयोग करें तो एक बात महत्त्वपूर्ण होगी—वह यह कि

हम देश को काल में तथा काल को देश में परिवर्तित करने की सम्भावना को जाने अनजाने मान्यता देते ही रहेंगे। परन्तु ऐसा कोई भी नहीं कर सका, यहां तक कि आइन्स्टीन भी।

देश और काल के कुछ मौलिक अन्तरों की ओर पहिले भी संकेत किया जा चुका है। उन मौलिक अन्तरों के कारण हो हमें पाइथागोरस के सिद्धान्त का कुछ संशोधनों के साथ प्रयोग करना पड़ेगा। आइन्सटीन ने इस अन्तरकी अभिव्यञ्जना पाइथागोरस के सूत्रमें कालान्तर के वर्ग को ऋणात्मक मानकर की है। आग लगने और नर-हत्या में चतुर्घातीय दूरी इस प्रकार है:

$$\sqrt{(५२८०)^2 - (८०००००००००००)^2}$$

यहां पर ऋणात्मक राशि बहुत बड़ी है, इसका कारग यह है कि हमारी घटनाएं साधारण जीवन की हैं। यदि हम ब्रह्मांण्ड की घटनाओं का निर्वाचन करें तो इन राशियों में अपेक्षाकृत अधिक अन्तर नहीं होगा। दूरी के इन चार अवयवों में से एक को ऋणात्मक मानना कुछ तार्किक नहीं लगता, यद्यपि इसका कारण हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं। इस प्रकार किसी घटना के नियामक निम्न प्रकार लिखे जा सकते हैं:

प्रथम नियामक	x
द्वितीय ,,	y
तृतीय ,,	z
चतुर्थ ,,	$d \times i$ प्रकाश-फ़ुट

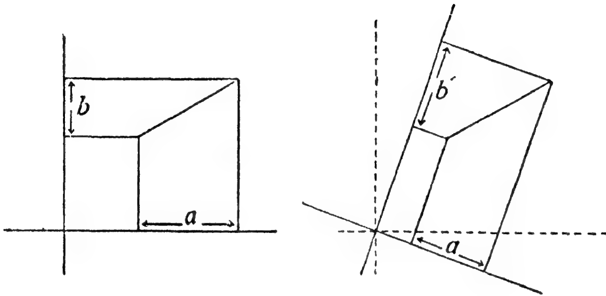
और इस प्रकार पाइथागोरस का सिद्धान्त बिना किसी संशोधन के लागू किया जा सकता है। यह i काल्पनिक संख्या है।

यह सब विवरण हमें यही बताता है कि देश और काल को इकाइयों में कुछ वास्तविक अन्तर है। एक छड़ी को घड़ी नहीं बनाया जा सकता है और न एक घड़ी को छड़ी।

३·८. क्या देश को काल में बदल सकते हैं? यद्यपि इस देश और काल के अन्तर को सुलझाने में गणित के सब प्रयास असफल ही हुए, तथापि पहिले की अपेक्षा आज विज्ञान देश-काल की समानता के अधिक निकट पहुंच गया है। वास्तव में आज का विज्ञान देश और काल की दूरियों को चतुर्घातीय घटनाओं की दूरी की देश-अक्ष एवं काल-अक्ष पर

छाया मात्र मानता है और यह छाया एक विशेष रीतिसे घटाई बढ़ाई जा सकती हैं। कैसे?

द्विघातीय देश की कल्पना कीजिये। इस देशमें दो बिन्दुओं की दूरी l है। अक्षों पर इस दूरी की छाया की लम्बाइयां a और b हैं, अर्थात् एक अक्ष पर ये दो बिन्दु



चित्र ८

a फुट दूरी पर हैं और दूसरी पर b। अब यदि हम इन अक्षोंको घुमा दे तो ये दूरियां बदल जावेंगी और इस प्रकार यह a' तथा b' हो जावेंगी। परन्तु इन अक्षों के परिवर्तन से बिन्दुओं की दूरी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पाइथागोरस के प्रमेय के अनुसार

$$\sqrt{a^2+b^2}=l=\sqrt{a'^2+b'^2}$$

अब कल्पना कीजिये कि एक अक्ष से हम देशान्तर को निरूपित करते हैं और दूसरे से कालावधि को। इस दशा में पहले उदाहरण के दो बिन्दु दिक्काल में घटनाएं होंगी और इन दो अक्षों पर उनकी छाया उनके बीच के कालान्तर तथा देशान्तर का निरूपण करेगी। वास्तव में होगा यह कि एक Observer, जो किसी बस या अन्य गाड़ी से जा रहा है, वह दूसरे एक ही स्थान पर खड़े हुए Observer, से भिन्न देशान्तर तथा भिन्न कालावधि महसूस करेगा। मान लो, एक चलती हुई गाड़ी के भोजनालय में एक व्यक्ति अपना खाना खा रहा है। वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों के दृष्टिकोण से तो यह व्यक्ति अपना खाना एक ही जगह खा रहा है; परन्तु नीचे खड़े हुए दो व्यक्तियों में से एक ने उस व्यक्ति को रोटी खाते और एक ने रोटी के बाद कुछ फलाहार करते देखा है, तो वे उसके

खाने के स्थान में एकमत नहीं हो सकते। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक व्यक्ति यदि घटनाओं को एक ही स्थान पर, परन्तु अलग-अलग समय पर देखता है, तो दूसरा व्यक्ति जो गति की दृष्टि से प्रथम व्यक्ति से विभिन्न है, उन घटनाओं को एक ही समय में, किन्तु भिन्न-भिन्न स्थानों पर देखेगा। चलती गाड़ी के भोजनालय में आमने-सामने बैठे दो व्यक्तियों ने सिगरेट ठीक एक समय जलाई ; उसी कार में खड़ा बैरा तो यही कहेगा कि सिगरेट एक ही समय जली, परन्तु खिड़की से झांकता हुआ नीचे खड़ा एक अन्य व्यक्ति कहेगा कि नहीं एक ने पहिले तथा दूसरे ने बाद में जलाई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्घातीय ज्यामिति में देश तथा काल उस चतुर्घातीय अन्तर की अक्षों पर छाया मात्र है।

३.९. माइकल्सन का प्रयोग. ईथर का नाम हमने सुना है। ऐसा माना जाता था कि ईथर इस सारे विश्व में व्याप्त है। उसको गतिहीन की भी संज्ञा दी जाती थी और प्रकाश की तरंगों को Transmit करने का माध्यम माना जाता था। माइकल्सन ने अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि ईथर जैसे किसी पदार्थ को मानने की आवश्यकता नहीं है। देकार्त ने इस शानदार पदार्थ ईथर का आविष्कार किया था। इस ईथर के कारण देश में वस्तुएं केवल क्रमबद्ध ही नहीं की जा सकती हैं, अपितु उनका निर्धारण भी सम्भव है। माइकल्सन ने प्रकाश की एक किरण ईथर की दिशा में तथा दूसरी उसके विरुद्ध दिशा में एक समय पर भेजी। यदि प्रकाश-तरंगें ईथर के कारण चलती हैं तो वे एक साथ नहीं लौटनी चाहिए थी। परन्तु वे एक साथ ही लौटीं। अब आप माइकल्सन के आश्चर्य का अनुमान लगा सकते हैं। उसको इतना आश्चर्य हुआ कि वह अपने इस प्रयोग पर पहिले तो विश्वास न कर सका। उसने यह प्रयोग कई बार किया और प्रकृति का सदैव यही उत्तर आया कि मुझे तो इस ईथर जैसे पदार्थ का ज्ञान नहीं है।

हाँ, एक बात हो सकती है। माइकल्सन ने अनुमान लगाया कि यदि यह मान लिया जावे कि जिस मेज़ पर यह उपकरण रखा था वह कुछ पृथ्वी की गति की दिशा में सिकुड़ गया था। वास्तव में ऐसा अनुमान लगाना तो सरल है, परन्तु इससे उत्पन्न हुई जटिलताओं को समझना बहुत कठिन है। एक झील में चलती हुई मोटर-नाव पर पानी का प्रभाव तो पड़ता ही है, जो उसे चारों ओर से दबा देता है। यदि नाव लकड़ी की हुई तो यह प्रभाव और भी अधिक होगा। परन्तु प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि सिकुड़न की मात्रा वस्तुविशेष, पर निर्भर नहीं करती, अपितु वस्तु की गति पर

निर्भर होती है। यह एक विश्वव्यापी प्रभाव है और यहाँ हमारा तात्पर्य देश के सिकुड़ने से है।

परन्तु हमारे दैनिक जीवन में यह सिकुड़न दृष्टिगोचर नहीं होती। उसका कारण यह है कि सिकुड़न की मात्रा वस्तु का

$$१ - \sqrt{१ - \frac{v^२}{c^२}}$$

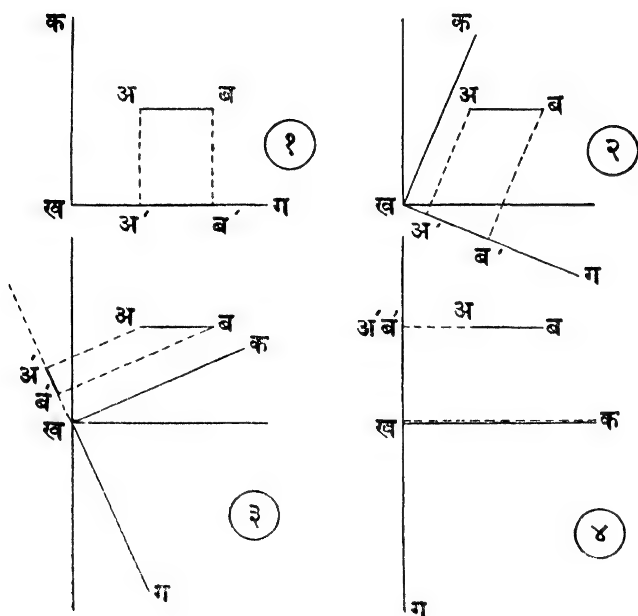
होती है, जहाँ v वस्तु की गति तथा c प्रकाश-वेग है। यदि एक मोटर ५० मील प्रति घंटे की गति से जा रही है तो उसके आयतन में जो कमी होगी वह है $१ - \sqrt{१ - १०^{-१४}}$ = ०.०००,०००,०००,०००,०१। यह इतनी कम है कि आप इसका अनुभव कर ही नहीं सकते। हाँ, यदि कुछ वस्तुएं प्रकाश-वेग के ५०,९० तथा ९९ प्रतिशत वेग से चलने लगें तो उनके आयतन अपने गतिहीन आयतन के ८६, ४५, तथा १४ प्रतिशत रह जावेंगे।

चतुर्घातीय ज्यामिति के दृष्टिकोण से यदि हम देखें तो कह सकते हैं कि यह सिकुड़न देश-काल अक्षों को घुमाने के कारण हुई है।

इसी चतुर्घातीय ज्यामिति के आधार पर हम यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि इस सिकुड़न का ज्ञान हमें तब होता है जब पिंडों का वेग लगभग प्रकाश-वेग के समान हो। जिस कोण से हम देश-काल-अक्षों को घुमाते हैं, उसका परिमाण पिंड के चतुर्घातीय वेग पर निर्भर होता है। चूंकि चतुर्घातीय संसार में कालावधि की माप साधारण कालावधि तथा प्रकाश-वेग के गुणनफल से होती है, अतएव पिंड का चतुर्धातीय वेग साधारण वेग तथा प्रकाश-वेग के अनुपात के बराबर होता है, अतः अक्षों का परिवर्तन करनेवाले कोण का परिमाण पिंड के साधारण वेग तथा प्रकाश-वेग के अनुपात पर निर्भर करता है। जितना ही अधिक यह कोण होगा उतनी ही सिकुड़न बढ़ेगी। चित्रों ९ में इस तथ्य का दिग्दर्शन कराया गया है। इस चित्र को भलिभांति देखिए कि अ ब का देशान्तर न्यून होता हुआ चित्र नं० ४ में शून्य हो गया।

यह सिकुड़न विज्ञान ही में नहीं, दर्शन में भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। निरपेक्ष देश की सत्ता समाप्त हो गई, देश और काल में समन्वय हो गया तथा देश की सापेक्षता सिद्ध हो गई। देशान्तर वास्तविक नहीं हैं, अपितु यह सब तो द्रष्टा की दशा पर निर्भर

करता है। विश्व में किसी एक स्थिर ढांचे की खोज निरर्थक है। देश की कोई अपनी सत्ता नहीं है, इसकी धारणा तो पिंडों के आपसी सम्बन्ध से है। कोई पिंड आगे है कोई पीछे, कोई ऊपर कोई नीचे। उससे देश की धारणा का जन्म होता है।



चित्र ९.

जिस प्रकार इन देश काल अक्षों को घुमाने से देश में सिकुड़न पैदा हो जाती है, उसी प्रकार कालान्तर भी प्रभावित होता है। हां, एक बात है, चूंकि कालान्तर का माप काल्पनिक होता है, इसलिए यदि देशान्तर में सिकुड़न पड़ती है तो उससे कालान्तर बढ़ेगा। यदि एक घड़ी बहुत तेज़ जाती हुई गाड़ी में है और दूसरी अपेक्षाकृत स्थिर स्थान पर रखी है तो गाड़ीवाली घड़ी सुस्त हो जावेगी, अर्थात् दो टिकों का कालान्तर बढ़ जावेगा। और जिस प्रकार देशान्तर की सिकुड़न पिंडविशेष पर निर्भर नहीं करती अपितु वह विश्वव्यापी प्रभाव है, उसी प्रकार कालान्तर का परिवर्तन भी किसी ख़ास घड़ी पर निर्भर नहीं करता, अपितु प्रत्येक क्रिया में, जिसमें गति है, लागू होता है।

वास्तव में सारी भौतिक, रासायनिक तथा जीवों में होनेवाली क्रियाएं ही गति के अनुसार प्रभावित होंगी। यदि कालान्तर का प्रभाव केवल घड़ियों में हुआ करता तो बहुत अनर्थ हो जाता और केवल कुछ ही मनुष्य शेष रहते जो अन्य क्रियाओं के उचित प्रतिपादन के लिये कालावधि की ठीक प्रकार गणना कर सकते। मान लीजिए कि यह प्रभाव केवल घड़ियों पर ही पड़ा, घड़ियां सुस्त हो गईं तो जो भोजन आप को ६ घंटे बाद मिलना चाहिए था वही आप को १० घंटे बाद या १२ घंटे बाद मिला अर्थात् अब आपका भोजन आधा हो गया। आप भूख से परेशान हो जावेंगे। आपने सब्ज़ी बनाई, उसे आध घंटा आग पर रखा उसके बाद देखा तो उसको जला हुआ पाया। परन्तु ऐसा हो नहीं सकता। उस चतुर कारीगर ने हर बात का प्रबन्ध पहिले ही कर रखा है। आपकी प्रत्येक गति उसी हिसाब से सुस्त हो जावेगी, आप को भूख भी १२ घंटे बाद लगेगी, आपकी सब्ज़ी भी नहीं जलेगी, क्योंकि सब भौतिक तथा रासायनिक क्रियाएं सुस्त हो गईं। इन क्रियाओं का सुस्त होना भी गति पर निर्भर करता है और इसकी मात्रा भी उतनी ही होती है जितनी देशान्तर की सिकुड़न, अर्थात् यदि राकेट या गाड़ी, जिसमें हम सफ़र कर रहे हैं, की गति v है तो कालावधि में वृद्धि

$$\left(१ - \frac{v^2}{c^2}\right)^{-1/2}$$

गुनी हो जावेगी। यहां पर भी वही बात है, यदि गति तीव्र है अर्थात् $\frac{v}{c}$ अधिक न्यून नहीं है तब तो यह वृद्धि का अनुभव होगा, यदि गति इतनी है कि पिंड सिकुड़ कर आधा हो जाता है तो कालावधि दुगनी हो जावेगी।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'काल' केवल एक धारणा है जो हमने घटनाओं के क्रम-निर्धारण के हेतु बना ली है। जहां आइन्स्टीन ने यह बताया कि देश सापेक्ष है और यह केवल वस्तुओं को क्रमबद्ध करने की एक पद्धति मात्र है वहां उन्होंने काल को भी सापेक्ष-वाद में लपेट दिया। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार गन्ध, रूप तथा आकार, सब व्यक्ति-विशेष पर निर्भर है, उसी प्रकार काल भी हमारे मस्तिष्क की उपज है। जिस प्रकार बिना नेत्रों के आप रंग, रूप का अनुभव नहीं कर सकते, उसी प्रकार बिना घटनाओं के काल की अनुभूति भी असम्भव है। एक व्यक्ति का घटनाओं का अनुभव, उनके

पहिले या बाद में होने से होता है। अतः काल तो व्यक्तिगत हुआ। इसका स्वयं से मापन नहीं हो सकता। घटनाओं के साथ हम संख्याओं को इस प्रकार सम्बद्ध कर सकते हैं कि पहिले हुई घटनाएं छोटी संख्याओं से तथा बाद की बड़ी संख्याओं से सम्बन्धित कर दी जावें। घड़ियाँ भी तो यही करती हैं, और इस प्रकार काल का मापन होता है। हमारी सब घड़ियां सौर परिवार को आधार मानकर बनाई गई हैं। एक वर्ष क्या है? पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा करने का परिमाण। बृहस्पति पर रहनेवाले प्राणी तो यही कहेंगे कि उनका वर्ष तो १ दिन का ही होता है। बृहस्पति अपने कक्ष पर भी एक बार घूमता है और तभी उसकी सूर्य की परिक्रमा भी समाप्त हो जाती है। अतः उन प्राणियों की काल की भावना हमारी धारणा से विभिन्न होती है। विज्ञान कहता है कि निरपेक्ष काल की सत्ता नहीं है। बिना किसी की अपेक्षा रखे हुए 'अब' और 'एक समय' की धारणा निर्मूल है। मान लीजिए, आप न्यूयार्क से शाम के ७ बजे अपने किसी दोस्त को लन्दन फ़ोन करते हैं। न्यूयार्क में उस समय ७ बजे हैं और लन्दन में रात के १२ बजे और हम कहते हैं कि आप दोनों एक ही समय में बात कर रहे हैं। यह केवल इसलिए कि हमारी घड़ियाँ सौर परिवार पर आधारित हैं और आप दोनों एक ही ग्रह के वासी हैं। इस 'समकालीनता' का सम्बन्ध उस नक्षत्र से तो जोड़ो जो हमारे यहां से ३० प्रकाश-वर्ष दूर है। यदि हम अपने इस ग्रह से इस नक्षत्र पर एक रेडियो सूचना भेजें तो उसे वहां तक जाने में ३० वर्ष लगेंगे और ३० वर्ष ही वापस आने में। आज जब हम यह कहते हैं कि 'इस समय' हम नक्षत्र को देख रहे हैं तो वास्तव में हम उस नक्षत्र को नहीं, अपितु विश्व में उसके उस स्थान को देख रहे हैं जो आज से ३० वर्ष पहिले उस नक्षत्र का था। आज और इस समय तो वह नक्षत्र आकाश के किसी और कोने में है। यह हुआ हमारा 'अब इस समय' का ज्ञान।

अब एक बात तो स्पष्ट है: वह यह कि दो व्यक्तियों की काल की धारणा विभिन्न होगी, यदि वे व्यक्ति गति की भिन्न दशाओं में हों। जब आप एक बहुत तेज़ राकेट में दूसरे ग्रह की यात्रा को निकलते हैं तो एक बहुत ही कौतूहल की बात होती है। यदि आप एक ऐसे राकेट से उस नक्षत्र की ओर चलें, जिसकी दूरी ९ प्रकाश-वर्ष है और यदि राकेट का वेग लगभग प्रकाश के वेग के समान है तो जानते हो कितना समय लगेगा नक्षत्र तक पहुंचने में? आप कहेंगे, लगभग ९ वर्ष जाने में और लगभग इतने ही वर्ष आने में लगेंगे। आप कहेंगे, राकेट में १९ वर्ष के लिये खाद्य-सामग्री होनी

चाहिए, राकेट का तेल होना चाहिए। आप यहां फिर एक बात भूल गये; जब आप इतने तेज वेग से दौड़ेंगे तो आपकी सारी क्रियाएँ—पाचन क्रिया, विचार शक्ति, तथा श्वास क्रियाएँ आदि सब धीमी पड़ जावेंगी, न आपको राकेट के १८ वर्षों के तेल का प्रबन्ध करना पड़ेगा और न अपने भोजन का। आप पृथ्वी से प्रातःकाल कलेवा करके चलिए अपने राकेट में, दोपहर को (६ घंटे बाद) उस नक्षत्र पर पहुंच जावेंगे। यदि आपको घर आने की शीघ्रता है तो दोपहर का खाना खाइए और वापस घर को चल दीजिये। संध्या तक आप घर लौट आवेंगे। यदि आप एक नवयुवक हैं और शादी करने के बाद तुरंत इस यात्रा पर निकले थे तो आपको एक नववधू नहीं मिलेगी—आपको मिलेगी एक अधेड़ उम्र की महिला। आपके सम्बन्धी आपको मरा समझकर भूल चुके होंगे। वे लोग आपके बिना १८ वर्ष रह चुके होंगे। यहां का १८ वर्ष का काल आपको केवल एक दिन प्रतीत हुआ। आपकी उम्र बढ़ गई और यदि आप प्रकाश के वेग से दौड़ें तो आपने काल को अपने वश में कर लिया। आप अमरत्व को प्राप्त हो गये।

३.१०. **क्या देश अपरिमित है:** मान लो, एक स्थान पर देश का अन्त हो जाता है। फौरन् ही आप पूछेंगे, उससे परे क्या है। और यदि यह भाव लिया जावे कि देश अपरिमित है—इस देश से परे वह देश—उससे परे और...और.........तो यह अकल्पनीय है—अविश्वसनीय है। न देश के असीम होने पर विश्वास है और न उसके अपरिमित होने का तर्क! बुद्धि तर्कजाल के इस तूफ़ान में खो जाती है। सापेक्षवाद से पूर्व देश के असीम और अपरिमित होने का विश्वास चलता रहा! क्या आप देश की अपरिमितता को कल्पना में स्थान दे सकेंगे?—एक बार देकर तो देखिए—आपकी रग-रग में इन्कलाब आवेगा—आप चिल्ला उठेंगे—अनन्त, देश, असीम अपरिमित झूठ, सच, मिथ्या—पागल हो उठेगें एक बार ही? और उसकी परिमितता से शून्य में खो जावेंगे!! इस शून्यता में विलीन होने से पूर्व ही आइन्स्टीन रंगमंच पर आ चुका था। देश परिमित है, परन्तु असीम है, अनन्त है। अपरिमित नहीं। अब आप पूछेंगें कि कैसे? यह शब्दजाल क्या है?

अपरिमित से हमारा मतलब यह है कि इसका परिमाण नहीं मापा जा सकता—और अनन्त तथा असीम से हमारा तात्पर्य यह है कि इसकी सीमा का निर्धारण असंभव है। देश का परिमाण मापा जा सकता है, हम यह बता सकते हैं कि देश का आयतन इतना है, परन्तु हम इसका आदि और अन्त नहीं बतला सकते। अपरिमित देश की

कल्पना हमारी बुद्धि के बाहर है, पर परिमित और असीम देश की कल्पना कठिन तो है, परन्तु बुद्धिगम्य है।

वृत्त आपने देखा है, वृत्त की परिधि से भी आपकी अच्छी खासी जानकारी होगी। इस परिधि की वक्र रेखा को आप धागे की सहायता से माप सकते हैं। क्या आप इसका कोई छोर बता सकते हैं? कदापि नहीं। यह रेखा परिमित है, परन्तु सीमाहीन अनन्त है। गेंद की ऊपरी सतह क्षेत्रफल की दृष्टि से परिमित परन्तु असीम है। अपनी इस पृथ्वी पर आप चलते जाइये, एक राष्ट्र के उपरान्त दूसरा राष्ट्र, दूसरे के उपरान्त तीसरा राष्ट्र आपको मिलता रहेगा। यूनान का एक साहसी यात्री पृथ्वी की खोज में पश्चिम की ओर चला—एक स्थान से दूसरे पर—आगे, और आगे—पश्चिम की ओर अनन्त की ओर—और फिर वापस आ गया उसी स्थान पर पूर्व की ओर से।

यदि देश परिमित है तो फिर इसकी रचना की आकृति कैसी है। क्या कोई ऐसा भी स्थान है जिसके आगे देश नहीं—जहाँ से 'आगे जाना निषिद्ध' है। यदि विश्व की सैर के लिये हम एक उड़ान भरें तो लाखों अरबों प्रकाश-वर्षों के उपरान्त एक ऐसा समय आवेगा जहां हमें एक काली दीवार मिलेगी जिसके आगे जाना निषिद्ध है। देश की परिमितता से हमारा ऐसा कुछ भी अभिप्राय नहीं है। यह तो हम मान गये कि देश परिमित और असीम हो सकता है। न्यूटन ने विश्व को अपरिमित मानने से इन्कार कर दिया था। यूक्लिड की ज्यामिति ने बहुत दिन तक हमें विश्व के ज्ञान से अलग रखा। यूक्लिड के ये सिद्धान्त गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रों में ठीक अवतरित नहीं होते। इन क्षेत्रों में सरल रेखाएं नहीं होतीं। यूक्लिड की ज्यामिति में यह एक स्वयं-सिद्ध मान लिया गया है कि दो स्थानों की निम्नतम दूरी उन दो स्थानों को मिलानेवाली सरल रेखा है। परन्तु यूक्लिड ने कभी इसे सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया। उन क्षेत्रों में जहाँ गुरुत्वाकर्षण-बल काम कर रहे हों, दो स्थानों की निम्नतम दूरी, जो प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचने में तय करेगा, एक वृत्त होती है—और इस वृत्त का ज्यामीतिय आकार गुरुत्वाकर्षण-बलों के जनक पिंडों पर निर्भर करता है। इस प्रकार का ज्यामीतिय आकार देश में स्थित पिंडों पर निर्भर करेगा। पृथ्वी-पुत्रों को सदा यही मालूम होगा कि प्रकाश-किरणें सदा एक रेखा में चलकर अपरिमित दूरी तय करेंगी। पृथ्वी पर रेंगते हुए कीड़े का अनुभव भी उसे यही बताता है कि पृथ्वी चपटी और अपरिमित है। जैसे कीड़े का यह इन्द्रियगत

अनुभव अशुद्ध है, वैसे ही मनुष्य का। क्योंकि इन्द्रियाँ सीमित हैं। हमारे इस नये देश में कोई सरल रेखा नहीं है, इसमें केवल बड़े-बड़े वृत्त हैं। फिर एक बार हम दोहराते हैं: देश परिमित है, परन्तु असीम है। वृत्त में दो घात (Dimension) होते हैं, इसी का त्रिघातीय अनुरूप गोला होता है—चतुर्घातीय अनुरूप क्या होगा? गोले के पृष्ठ के चतुर्घातीय अनुरूप के आकार की जो भी कल्पना आप कर सकते हैं, वही देश का आकार है। जेम्स जीन्स ने इस आकृति का वर्णन स्पष्ट शब्दों में किया है। साबुन के बुलबुले से हम अपने इस नये देश की आकृति की तुलना कर सकते हैं। लेकिन जीन्स के अनुसार हमारे देश की आकृति इस बुलबुले की आन्तरिक आकृति के समरूप नहीं अपितु उसकी बाहरी सतह के समान होगी—अन्तर केवल इतना है कि आपके इस बुलबुले की सतह द्विघातीय है, उस देश के बुलबले की सतह की आकृति चतुर्घातीय होगी।

यह हुआ देश का आकार—परिमित और चतुर्घातीय गोलाकार। यहाँ पर यह घात का टेढ़ा मसला आ गया—आग से निकले थे खाई में गिरे। देश में स्वयं तो तीन घात होते हैं, जैसा सामान्यतया हम मानते हैं। काल चौथा घात है और इसी चतुर्घातीय देश-काल की अविरतता को विश्व कहते हैं। देश और काल स्वयं निरपेक्ष नहीं हैं। हम जब भी किसी विषय की चर्चा इस अविरतता में करते हैं तो उस वस्तु में, उस देश में अथवा काल में चार घात होते हैं—किसी भी घात का माप शून्य हो सकता है।

अब हम इसके 'विस्तार' से आपको परिचित कराना चाहते हैं। उसके आकार का चित्र तो हम अपनी कल्पना में नहीं खींच सकते। प्रकाश-कणों और विद्युताणुओं की कल्पना भी तो हम नहीं कर सकते, परन्तु उनके धर्म से हम अनभिज्ञ नहीं हैं। गणित ने हमारी बहुत सहायता की है। इसी गणित की सहायता से हम देश के विस्तार का अंकन भी कर सकते हैं। माउंट विलसन वेधशाला के १०० इंच वाले टेलिस्कोप से देखने पर ५० करोड़ प्रकाश-वर्ष तक के देश में नक्षत्र-पुंजों को देखा गया है। एक नक्षत्र-पुंज से दूसरे नक्षत्र-पुंजों की दूरी लगभग २० लाख प्रकाश वर्ष है। देश के विस्तार की जानकारी के लिये इसकी वक्रता का व्यास जानना होगा। त्रिघातीय गोले का व्यास जानने का साधन सरल है। देश की इस चतुर्घातीय आकृति का कारण गुरुत्वाकर्षण के बल हैं और इन बलों का परिणाम पूर्णतया देश में स्थित पदार्थ पर निर्भर करता है। यदि देश में स्थित पदार्थ के औसत घनत्व का ज्ञान हमें हो जावे तो हमारी यह विश्व के आकार की पहेली हल हो जावेगी।

मनुष्य ने क्या नहीं कर डाला। ऐसा मालूम होता है कि यह ६ फुट का आदमी किसी दिन किसी कोने में छिपे हुए उस निराकार को भी खोज लावेगा। विल्सन वेधशाला के ज्योतिषाचार्य श्री ऐडविन हर्बल ने वर्षों के अथक और निरन्तर प्रयास से देश के चप्पे-चप्पे का अध्ययन कर डाला ओर उसी ने हमें इस औसत घनत्व का ज्ञान कराया। उसने हमें यह बताया कि $१०^{२९}$ घन-सेन्टीमीटर देश में पदार्थ का एक ग्राम बिखरा है, अर्थात् इसका घनत्व $\frac{१}{१०^{२९}} = १०^{-२९}$ ग्राम-घन सेन्टीमीटर है। जब महान् आइन्स्टीन ने अपने समीकरणों में इस घनत्व का मान रखा तो उसे इस वक्रता के विषय में एक बहुत ही सन्तोषजनक उत्तर मिला। इन समीकरणों की सहायता से यह सिद्ध हुआ कि देश के चतुर्घातीय गोले का अर्धव्यास ३५० खरब प्रकाश-वर्ष हैं। आइन्स्टीन के इस विशाल देश में खरबों नक्षत्रपुञ्ज समा सकते हैं—एक नक्षत्रपुंज में करोड़ों नक्षत्र होते हैं। इस देश में यदि एक तीव्र प्रकाश की किरण प्रसारित की जावे तो वह एक विशाल वृत्त बनाकर अपने उसी स्थान पर लगभग २००० खरब वर्षों वाद लौट आवेगी।

यह है असीम, परिमित देश।

४

मात्रा, ऊर्जा और गुरुत्वाकर्षण

प्रारम्भिक कक्षाओं में यह बताया जाता है कि पदार्थ में दो गुण होते हैं, एक तो यह कि वह जगह घेरता है, दूसरा यह कि उसमें भार होता है। भार गुरुत्त्वाकर्षण पर निर्भर करता है। सा । ही मात्रा पदार्थ का वह भाग है जो किसी वस्तु विशेष में होती है। मात्रा सदैव एक रहती है। भौतिक विश्व की मशीन के तीन अवयव होते हैं। —(१) देश (२) काल (३) मात्रा। देश और काल की सापेक्षता को पहिले अध्यायों में सिद्ध किया जा चुका है—उस पिंड या वस्तु की गति पर इस देश एवं काल का मान निर्भर करता है। परन्तु सापेक्षवाद का सबसे मुख्य कार्य 'मात्रा' को एक नई मान्यता देना है।

४.१. मात्रा क्या है? भार से भिन्न यह पदार्थ की वह प्रवृत्ति है जो उसकी गति का विरोध करती है। $\frac{1}{2}$ सेर के एक पत्थर को अधिक तीव्र गति से फेंक सकते हैं; एक मन के पत्थर को शायद आप हिला भी न सकें। पुराने गतिविज्ञान में मात्रा को एक नियत राशि, पदार्थ का एक अचल गुण माना जाता था। एक आदमी की मात्रा उस समय भी उतनी ही मानी जाती थी जब वह चुपचाप पृथ्वी पर सो रहा है और उस समय भी उतनी ही जब वह यान में २०० मील की गति से उड़ रहा है। परन्तु सापेक्षवाद इस तथ्य को नहीं स्वीकार करता। वह तो कहता है कि गति के साथ आपकी मात्रा भी बढ़ जावेगी। पुराना विज्ञान इस तथ्य को नहीं पहिचान सका।

उन लोगों के अनुसंधान के यंत्र इतने अच्छे नहीं थे कि वे सूक्ष्म गति के कारण होनेवाले मात्रा के परिवर्तन को देख सकते। यह तो उसी समय सम्भव है जब वह गति प्रकाश की गति के निकट हो। देश-काल का विवरण देते समय यह बतलाया गया था कि गति के साथ किसी पदार्थ का आयतन गति की दिशा में सिकुड़ता है। इससे अब आपको आश्चर्य हो सकता है कि गति के साथ आयतन कम हो रहा है और मात्रा बढ़ रही है; अर्थात् पदार्थ अधिक ठोसपने की ओर पहुंच रहा है। परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि आयतन में केवल एक ही ओर से कमी हो रही है और फिर मात्रा भारीपन अथवा ठोसपन को तो कहते नहीं—यह तो उसके जड़त्व की माप है।

देश और काल के अनुरूप ही मात्रा की सापेक्षता का निरूपण आइन्स्टीन ने समीकरण से किया है। यह समीकरण रूप में देश, और काल की सापेक्षता के समीकरण के समान है। परन्तु इस सापेक्षता के परिणाम अधिक व्यापक हैं। यदि किसी v वेग से जाते हुए पिंड की मात्रा m हो और स्थिर अवस्था में उसकी मात्रा m_0 और प्रकाश का वेग c से प्रदर्शित किया जावे तो m_0 एवं m का निम्नलिखित सम्बन्ध होगा

$$m = \frac{m_0}{\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}}$$

समीकरण से स्पष्ट है कि m_0 का वृद्धक खंड $\left(1 - \frac{v^2}{c^2}\right)^{-\frac{1}{2}}$ है। यदि इस खंड का मान बढ़ता है तो m का भी बढ़ेगा। यदि v का मान c की अपेक्षा बहुत कम हो तब m और m_0 में अधिक अन्तर नहीं होगा, एक घंटे में हज़ार मील दौड़नेवाले राकेट से भी इस पर अन्तर नहीं पड़ेगा। मात्रा में अन्तर तो उस समय मालूम होगा जब $\frac{v}{c}$ लगभग एक के बरावर हो जावे। यदि $v = c$ हो तब $m = \infty$, अर्थात् मात्रा में असीम वृद्धि हो जावेगी। ऐसे पिंड की मात्रा असीम हो गई; असीम मात्रा का पिंड गति में असीम प्रतिरोध उत्पन्न करेगा। यह एक प्रतिकूलता हुई जो सिद्ध करती है कि प्रकाश के वेग जितना किसी पिंड का वेग नहीं हो सकता।

सबसे अधिक सतर्कता और सत्यता के साथ मात्रा की वृद्धि के सिद्धान्त की जांच

हुई है और सबसे अधिक उपयोगी भी यही सिद्ध हुई है। प्रकाश के वेग का ९९% वेग प्रकृति में, कुछ कणों में पाया जाता है। वैद्युत् के खूब तीव्र क्षेत्रों में विद्युताणु लगभग ९९% वेग से घूमते हैं और रेडियोधर्मी तत्त्वों की नाभियों से भी β कण इसी वेग से निकलते हैं। जो वैज्ञानिक परमाणु के शोध कार्यों में लगे हैं उन्हें यह ज्ञात है कि मात्रा की वृद्धि कोरा एक सिद्धान्त ही नहीं, अपितु यह तो व्यावहारिक तथ्य है। यह सत्य है कि इस सिद्धान्त का प्रयोग अधिक शक्तिशाली यंत्रों में ही किया जाता है।

चूंकि गति की वृद्धि से मात्रा में वृद्धि होती है और गति ऊर्जा का दूसरा रूप है, अतः मात्रा की यह वृद्धि ऊर्जा की वृद्धि के कारण हुई। आइन्स्टीन का यह तर्क विश्व के लिये कितना महत्त्वपूर्ण हुआ? आइन्स्टीन से पहले यह मान्यता थी कि ऊर्जा में मात्रा नहीं होती। ऊर्जा और मात्रा में कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। परन्तु आइन्स्टीन ने अपने प्रयोगों से और तर्क से यह सिद्ध किया कि ऊर्जा में मात्रा होती है और मात्रा तथा ऊर्जा में निम्न सम्बन्ध है

$$E = mC^2$$

यहां E ऊर्जा, m मात्रा और C प्रकाश का वेग हैं। मात्रा की इकाई ग्राम तथा वेग की इकाई सेन्टीमीटर प्रति सेकंड है। इसकी महत्ता से आप उस समय चौंकेंगे जब हम आप को कुछ इसके करिश्मे दिखलावें। देखिए, यदि लगभग एक सेर कोयले को पूरा का पूरा $E = mC^2$ समीकरण के अनुसार ऊर्जा में बदल लिया जावे तो हमें २,५००,०००,०००,००० किलोवाट घंटे यानी २५ खरब किलोवाट घंटे बिजली की ऊर्जा मिलेगी। इतनी ऊर्जा अमेरिका दो महीने में बना पावेगा।

ऊर्जा और मात्रा के इस समन्वय से प्रकृति के बहुत से रहस्य अनायास ही प्रकट हो गये। ऊर्जा और पदार्थ की अविनाशिता एवं सुरक्षितता का नियम कहता था कि ऊर्जा नष्ट नहीं की जा सकती, वह अपने एक न एक रूप में रहेगी। इसी प्रकार पदार्थ के विषय में धारणाएं थीं। पदार्थ को अक्रिय (अचेतन), व्यक्त तथा मात्रा वाला और ऊर्जा को सक्रिय (चेतन), अव्यक्त तथा मात्राहीन मानते थे। तब यह प्रश्न उठता था कि सूर्य अपनी ऊर्जा प्रति दिन खो रहा है; वह दिन दूर नहीं जब वह बिल्कुल ऊर्जाहीन हो जावेगा। यूरेनियम और रेडियम लाखों वर्षों से β कण निकाल रहे हैं और अब भी चल रह हैं। परन्तु $E = mC^2$ यह समीकरण हमें बताता

है कि ऊर्जा तो मात्रा से भी बन सकती है और इस प्रकार विकिरण की यह क्रिया लगातार चल सकती है। यही समीकरण हमें परमाणु की नाभि में स्थित ऊर्जा का आभास कराता है और बताता है कि एक परमाणु-बम का कितना आकार होना चाहिए कि वह एक शहर का विध्वंस कर दे। मात्रा और ऊर्जा मूलतः एक हैं और यह जो अन्तर हमें दिखलाई पड़ता है, अस्थायी हैं।

४·२. अब हम यह अधिक आसानी से समझ सकते हैं कि क्यों विकिरण हमें कभी तो कणात्मक और कभी तरंगात्मक दिखाई देता है। प्रकृति की और दूसरी इसी प्रकार की द्वंद्वात्मकता का समाधान अब ठीक प्रकार से हो सकता है; क्योंकि अब हम कह सकते हैं कि ये सब तो एक ही मूल के विभिन्न रूप हैं। पदार्थ और ऊर्जा एक हैं; यदि पदार्थ की मात्रा में कमी हो और पदार्थ की गति प्रकाश के वेग के समान हो तब यह कमी विकिरण के रूप में प्रकट होगी। और यदि कहीं ऊर्जा का एकीकरण हो जावे और वह अक्रिय हो जावे तो मात्रा की उत्पत्ति होगी। यह केवल कोरे अनुमान अथवा गणित के सिद्धान्त ही नहीं रह गये हैं—परमाणु-बम इसका जीता जागता प्रमाण है। हां, अभी तक ऊर्जा से पदार्थ बनाने में मनुष्य अधिक सफल नहीं हुआ है, यद्यपि प्रकृति में स्वयं यह क्रिया होती रहती है जिसका विवरण हम परमाणु के अध्याय में कर चके हैं।

४.३. **गुरुत्वाकर्षण.** न्यूटन और पेड़ से गिरते सेब की कहानी सभी ने पढ़ी होगी। उस मस्तिष्क ने तर्क किया कि आखिर क्यों यह सेब पृथ्वी की ओर आया? अरस्तू ने तो यह कह कर बात टाल दी थी कि विश्व में सब वस्तुओं का एक स्वाभाविक स्थान होता है। परन्तु न्यूटन ने इस पर जरा भी विश्वास नहीं किया और अपने एक गुरुत्वाकर्षण के नियम का प्रतिपादन किया। नियम इस प्रकार है: प्रत्येक कण दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है: आकर्षण का यह बल उनकी मात्राओं के गुणनफल के अनुपातीय तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग के व्युत्क्रम-अनुपातीय (Inversely Proportional) होता है। अर्थात् यदि दो कणों की मात्राएं m_1 और m_2 हो और उनके बीच की दूरी d हो तो m_1 तथा m_2 के बीच आकर्षण बल F का सम्बन्ध इस प्रकार होगा :

$$F = G.\frac{m_1 m_2}{d^2}$$

यहां G एक स्थिरांक है।

इस नियम से न्यूटन और उसके समकालीनों के सामने जितनी भी समस्याएं थीं सबका समाधान हो गया था। यही होता है किसी भी वैज्ञानिक सत्यता का प्रमाण।

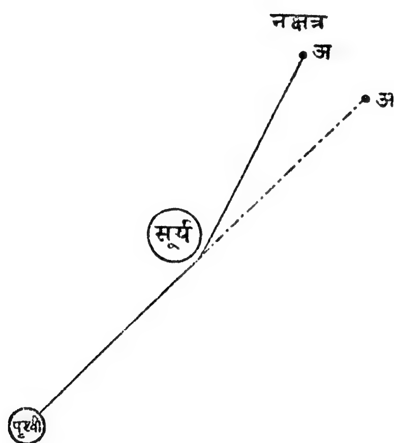
न्यूटन के गति-नियम के अनुसार केवल पदार्थों में ही आकर्षण होता है; ऊर्जा पर गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः अब यह समस्या आई कि दूरस्थ नक्षत्रों से पृथ्वी पर आनेवाली प्रकाश-किरणें जब सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में आती हैं तो उनका झुकाव सूर्य की ओर हो जाता है। यह एक प्रमाणित सत्य है, जिसकी पुष्टि न्यूटन के नियम से नहीं होती ?

हम एक उदाहरण में पहिले ही कह चुके हैं कि जब गद्देदार कुर्सी पर एक लोह का गेंद रखा जाता है तब उसके चारों ओर एक गड्ढा उत्पन्न हो जाता है। इस गड्ढे का कारण गेंद का जड़त्व है। मान लीजिए कि उस गद्दे पर एक इकन्नी रखी हो और उसीके जरा पास आप गेंद रखें तो जानते हैं, क्या होगा ? गेंद के कारण उत्पन्न गड्ढे में वह इकन्नी आ जावेगी। आइन्सटीन ने इस मंत्र को सब से पहिले पहिचाना था। उसने कहा कि गुरुत्वाकर्षण तो जड़त्व को ही कहते हैं। देश-काल की अविरतता में प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर एक वक्रता उत्पन्न हो जाती है। आज मैं यह नहीं कहता कि चुम्बक लोहे को दूर से ही अपनी ओर किसी रहस्यमय बल द्वारा आकर्षित करता है। आज का विज्ञान तो यही मानता है कि चुम्बक अपने चारों ओर के देश में अपने जड़त्व के कारण कुछ ऐसे गुण पैदा कर देता है कि लोहे का उस चुम्बकीय क्षेत्र में एक विशेष प्रकार का आचरण हो जाता है। जिसने माध्यमिक कक्षाओं में विज्ञान का अध्ययन किया हो वह चुम्बकीय तथा वैद्युत् क्षेत्र के आकार से परिचित है। ये क्षेत्र वैज्ञानिक सत्य हैं। उसी प्रकार आइन्स्टीन का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र भी एक वैज्ञानिक सत्य है। मैक्सवेल तथा फ़ैराडे की यह धारणा थी कि चुम्बक, देश में कुछ विशेष गुणों की रचना कर सकता है। इसी प्रकार आइन्स्टीन की भी धारणा थी कि नक्षत्र, ग्रह तथा चांद भी अपने चारों ओर के देश में विशिष्ट गुणों को जन्म देते हैं; और जिस प्रकार चुम्बकीय क्षेत्र के आकार पर लोहे के पिन की गति निर्भर करती है उसी प्रकार गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में पिंडों का मार्ग निर्भर करता है।

न्यूटन के नियमों से सब दूसरे नक्षत्रों की गति का कारण और उनका पूरा विवरण मिल गया, परन्तु बृहस्पति ऐसा रहा जिसके विशिष्ट आचरण का कारण न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण नियम नहीं बता सका। सूर्य के चारों ओर घूमने का बृहस्पति का कोई एक निश्चित मार्ग नहीं है। न्यूटन के नियम से यह निश्चित होना चाहिए। प्रति वर्ष इसके

पथमें थोड़ा-सा अन्तर आ जाता है। आइन्स्टीन ने इसका कारण यह बतलाया कि यह ग्रह सूर्य के सबसे अधिक निकट है और इसका वेग भी बहुत है जिसके कारण इसके मार्ग पर सूर्यके गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रका बहुत प्रभाव पड़ता है। आइन्स्टीनके नियमके अनुसार जो अन्तर उसके मार्ग पर आना चाहिए था, ठीक वही आता था।

४·४. आइन्स्टीन यह सिद्ध कर चुका था कि मात्रा तथा ऊर्जा मूलत: एक ही हैं। न्यूटन के नियम इस तथ्य का कारण नहीं बता सके कि प्रकाश के पथ पर क्यों गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव पड़ता है? नक्षत्र A से आनेवाली प्रकाश-किरणें जैसे ही सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में आती हैं वे अपने पथसे विचलित हो जाती हैं और इस विचलन के कारण,



चित्र १०

नक्षत्र A पर न दिखाई देकर, A′ पर दिखाई देगा। इसको प्रमाणित करने में एक दिक्कत यह थी कि जब सूर्य के दर्शन होते हैं तब नक्षत्र नहीं दिखलाई दे सकते और जब नक्षत्र दिखते हैं तब सूर्य के दर्शन सम्भव नहीं। परन्तु सूर्यग्रहण के दिन दोनों के दर्शन एक साथ सम्भव हो जाते हैं। आइन्स्टीन ने अपने नियम से इस विचलन की गणना की और सूर्यग्रहण के दिन इस नक्षत्र का चित्र लिया गया। २९ मई, सन् १९१९, को इस सत्य की सारे विश्व में घोषणा हो गई कि आइन्स्टीन का गुरुत्वाकर्षण का नियम बिल्कुल ठीक है।

वास्तव में निरपेक्ष गति की धारणा को समाप्त करने का श्रय आन्इस्टीन के गुरुत्त्वाकर्षण के सिद्धान्त को है। न्यूटन का गुरुत्त्वाकर्षण एक बल था, जो पिंडों के बीच में क्रियाशील होता है। आइन्स्टीन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त यह बतलाता है कि इस धारणा का जन्म विश्व के आकार तथा रचना के विषय में एक त्रुटिपूर्ण धारणा के कारण हुआ। प्रकृति की रचना को यांत्रिक मानने से हम यह समझ बैठ कि पदार्थ में आकर्षण का बल होता है। जब तक हमारी यह धारणा रहेगी कि विश्व एक यंत्र की भांति है तब तक हम यही समझेंगे कि उसके विभिन्न अवयव, हमारी मांसपेशियों की भांति, बल का प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु आज का विज्ञान इससे इनकार करता है। इस प्रकार आइन्स्टीन और न्यूटन की गुरुत्त्वाकर्षण की धारणा में अन्तर है; न्यूटन उसे बल कहता है, जबकि आइन्स्टीन उसे ज्यामितीय आकार का एक विशिष्ट गुण मानता है।

५

न्यूटन—पूर्व और पश्चात्

५.१. पिंडों की गति. अरस्तू यह कहा करता था कि पिंडों की गति वृत्ताकार होने का कारण वृत्त की ज्यामिति की दृष्टि से पूर्णता है। सूर्य, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों के गति-मार्ग की खोज में कैप्लर तक के सब गणितज्ञ लगे रहे; परन्तु इस बात की ओर किसी का ध्यान नहीं गया कि उनका मार्ग वृत्ताकार ही क्यों है। इन सब गणितज्ञों ने अरस्तू के मत को मान लिया था, ऐसा जान पड़ता है। ग्रीस के पुराने मनीषियों का ख्याल था कि प्रत्येक पिंड की गति उसमें स्थित एक प्रकृति विशेष से प्रभावित होती है—यह विशेष प्रकृति उस पिंड को विश्व में उसका 'प्राकृतिक स्थान' देती है। पानी में पत्थर डूब जाता है। क्यों? धुआं आकाशीय मार्ग को पसन्द करता है? क्योंकि पत्थर का प्राकृतिक स्थान पानी का धरातल है और धुएं का आकाश। प्रत्येक भौतिक पदार्थ का अपना एक निजी स्वाभाविक स्थान होता है इस जगत् में। इस 'प्राकृतिक स्थान' की पुष्टि में अरस्तू ने एक और दलील दी। उसने कहा कि पदार्थों में भारीपन और हल्कापन होता है, जिसके कारण जगत् में उनका एक निश्चित एवं प्राकृतिक स्थान होता है—भारी पदार्थ सदैव नीचे और हल्के ऊपर रहेंगे। तेल सदैव पानी के ऊपर रहेगा। सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक यह मत चलता रहा। ब्रूनो ने इस मत का खंडन इस आधार पर किया कि भारीपन और हल्कापन निरपेक्ष नहीं है।

अब प्रश्न उठता है कि यदि सब भौतिक पदार्थों का अपना प्राकृतिक स्थान है तब

मेज़ पर लोहे का ताला कैसे रखा रहता है? भारी वस्तु हल्की पर रखी जावे, यह कैसे सम्भव है? अरस्तू बहुत तेज़ दिमाग़वाला इंसान था। उसने फ़ौरन् उत्तर दिया कि ऐसा ही सम्भव है, बशर्ते कि ताले को लकड़ी की मेज़ पर रखने के लिये किसी माध्यम का सहारा लिया गया हो। जब एक पत्थर को हवा में ऊपर की ओर फेंका जाता है तब उसके साथ की हवा भी गति में आ जाती है और वह पत्थर को वापस उसके प्राकृतिक स्थान धरातल पर नहीं आने देती। ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व विचारों में संशोधन हुआ। अरस्तू रंगमंच से उठ गया था और प्राकृतिक स्थान का सिद्धान्त मनुष्य के मस्तिष्क में उठते हुए प्रश्नों का उत्तर न दे सका। एक दूसरी धारणा का जन्म हुआ, जिसके अनुसार किसी वस्तु के गतिशील होने का कारण, उसको किसी अन्य वस्तु से प्राप्त Impulse है। यह Impulse उस वस्तु में कुछ देर तक ठहरता है और शनैः शनैः लुप्त हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि गतिशील वस्तु की रफ्तार कम होती जाती है और अन्त में वह गतिहीन हो जाती है। वास्तव में हम वस्तु-जगत् में ऐसा ही देखते हैं—इस धारणा की पुष्टि भी वस्तु-जगत् की वास्तविक घटनाओं से हुई। परन्तु यह सत्य नहीं था। वैज्ञानिक सत्यों के धीरे-धीरे प्रकट होने का कारण ही यह है कि प्रकृति प्रायः ऐसे रूप में प्रकट होती है कि वही सत्य प्रतीत होता है। Impulse आता है और धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है—स्वयं ही बिना कारण के कार्य होता है—प्रकृति में कहीं ऐसा नहीं देखा जाता। इस गति के शनैः शनैः कम होने का कारण वायु का प्रतिरोध तथा दूसरे बल थे। कल्पना कीजिए कि एक पिंड रिक्त देश में गति में ला दिया जाता है जहां दूसरे बल उस पर नहीं लगे हैं। क्या फिर भी यह Impulse शनैः शनैः कम होगा? कभी नहीं। वह वस्तु शाश्वत गति में रहेगी। कूज़ा वासी निकोलाज़ ने इस ओर संकेत किया था। उसका विश्वास था कि पृथ्वी देश में निरन्तर गतिशील है और उसको अपनी गति का ज्ञान भी नहीं है। निकोलाज़ का ख्याल था कि यदि एक चिकने गेंद को चिकने पत्थर पर एक बार गति में कर दिया जावे तो वह सदैव गति में रहेगा—सदैव चलता ही रहेगा, जब तक वायु या अन्य इसी भांति का कोई बल उसे न रोके। तथ्य सत्य थे। उसने इस निरन्तर गति का कारण बताया कि गेंद का प्रत्येक कण गेंद के केन्द्र से अपनी वृत्ताकार प्राकृतिक गति रखने की चेष्टा करता है। अतः जो गेंद गोल नहीं होगा वह निरन्तर गति में नहीं रह सकता।

देकार्ते सबसे पहिला गणितज्ञ था जिस ने गति के सिद्धान्त को स्पष्ट शब्दों

में चुन-चुन कर रखा। उसने कहा, 'एक वस्तु यदि वह स्थिर है तो उसमें स्थिर रहने का सामर्थ्य है और वह गति उत्पन्न करनेवाले का विरोध करेगी। इसी प्रकार जब वह गतिमें होती है तो उसमें उसी वेग से और उसी दिशा में गति में रहने की सामर्थ्य है'। वास्तव में उसीने इन बिखरे-बिखरे सिद्धान्तों को एक सूत्र में बांधने का सबसे पहिले प्रयास किया। उसने इन घटनाओं के विवेचन में गति का सहारा लिया, न कि बल का। उसका विश्वास था कि भौतिक-शास्त्र की सब घटनाओं का समाधान ज्यामिति और गणित के सिद्धान्तों द्वारा सम्भव है।

अब हम न्यूटन के सिद्धान्तों पर आते हैं। न्यूटन ने प्राकृतिक घटनाओं के समाधान के लिए बल को मूल माना और सारे वस्तु-जगत् को एक बहुत बड़ी मशीन, जिसमें विभिन्न बल विभिन्न दिशाओं में क्रियाशील हैं।

५.२. न्यूटन के गति-नियम. न्यूटन का वस्तु-जगत् छोटे-छोटे कणों से बना हुआ था। प्रत्येक कण देश में स्थिर तथा अस्थिर, दोनों दशाओं में रह सकता था। न्यूटन ने कणों की गति के तीन नियमों का प्रतिपादन किया:

१. यदि वाह्य बलों का प्रयोग न किया जावे तो वह अपनी स्थिर अथवा गति की अवस्था को परिवर्तित नहीं करता।

२. बलों की परिभाषा गति में हुए परिवर्तन से हुई। अर्थात् किसी पिंड पर लगाये गये बल का मान उसके वेग में हुए परिवर्तन और पिंड की मात्रा के गुणनफल के तुल्य होता है। वेग का अर्थ यहां रफ्तार से नहीं है। इसमें रफ्तार तथा दिशा दोनों का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। किसी एक में भी परिवर्तन होने का अर्थ है वेग में परिवर्तन ।

३. यदि एक पिंड A पिंड B पर क्रिया करता है तो पिंड B भी पिंड A पर प्रतिक्रिया करता है। कौन क्रिया है कौन प्रतिक्रिया, इससे कुछ मतलब नहीं। यह क्रिया प्रतिक्रिया परिमाण में समान तथा दिशा में विपरीत होती है।

हम देखते हैं कि निकोलाज़ का तर्क अशुद्ध था। गेंद का गोल ज्यामितीय आकार उसकी निरन्तर गतिशीलता का कारण नहीं था। न्यूटन का गतिविज्ञान का यह सिद्धान्त अपनी पूर्व प्रणालियों से उत्तम था। पूर्व की प्रणालियां केवल दिमाग़ की उधेड़बुन और सट्टेबाज़ी थीं, न्यूटन की यह पद्धति वैज्ञानिक प्रयोगों पर आधारित थी। यह पद्धति न केवल इस धरातल के पिंडों पर लागू होती है, अपितु आकाशीय पिंडों पर भी। सत्यता की ओर यह एक महत्त्वपूर्ण पग था, यद्यपि सत्यता से दूर था।

इसमें निहित निरपेक्ष देश तथा काल की सत्ता की धारणा थी जिसकी निर्मूलता को हम पहिले दिखा चुके हैं।

५.३. यांत्रिक दृष्टि. न्यूटन के नियम के अनुसार तो प्रत्येक कण एक दूसरे से प्रभावित हैं। यह आवश्यक नहीं है कि इन कणों में क्रियाशील बल एक दूसरे से सटे हुए कणों से आयें—देशान्तरवाले कणों से भी ये बल आ सकते हैं। सूरज और चांद समुद्र में ज्वार-भाटे को उत्पन्न तो करते ही हैं। उनके प्रभाव का नियंत्रण करनेवाले होते हैं उन बलों के देशान्तर, एक ही काल पर। इसका अर्थ हुआ कि विश्व की अवस्था में होनेवाला परिवर्तन विश्व की वर्तमान अवस्था पर निर्भर है, किसी समय पर विश्व की अवस्था से अभिप्राय है, विश्व में स्थित कणों की स्थिति तथा वेग। इस प्रकार यदि किसी समय विशेष पर हम यह जान सकें कि विश्व की अवस्था क्या है तो हम पूर्णतया यह जान सकेंगे कि उसकी आगे चलकर क्या अवस्था होगी। और यदि इसी प्रकार आगे की अवस्था जानते हुए चले जावें तो भविष्य हमारे लिये अंधकारमय न रहेगा। लैप्लास के अनुसार तो आज कल का परिणाम है और आने वाले कल का कारण। परन्तु आज तक तो किसी ऐसे गणितज्ञ ने जन्म नहीं लिया जो भूत और भविष्य को जान सके। केवल एक ऐसे गणितज्ञ के न होने से हम कितने असहाय हैं। विकासवाद कोरी कल्पना है, जो एक बार अस्तित्त्व में आ गया है उसी का दिग्दर्शनमात्र है। जो होना है वह होकर रहेगा, उसमें यह अदना इन्सान कुछ नहीं कर सकता।

यदि ऐसा है तो 'कारण और कार्य' की महत्ता ही समाप्त हो जाती है। जब A घटना के बाद B घटना आनी ही है तब इससे उस नटनागर की नियति में क्या अन्तर आता है कि हम A को कारण मानें या B को। तो कारण कहां हुआ? कारण हुआ कणों की उस सुव्यवस्था में जो सृष्टि की रचना के समय पर हुई थी। ईश्वर ने हर चीज़ की पहिले ही व्यवस्था की थी—ऐसा धार्मिक लोग कहते हैं। यह सच भी है। परन्तु विज्ञान कुछ और भी कहता है—घटनाओं का कारण रचना के समय की व्यवस्था को मानना आवश्यक नहीं है; भूत की प्रत्येक व्यवस्था अगली घटनाओं का कारण है। वास्तव में महत्त्वपूर्ण है वह व्यवस्था, न कि ईश्वर जिसने यह व्यवस्था की।

भविष्य की सारी घटनाएं तो नहीं जानी जा सकतीं, फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ज्ञान तो सम्भव है ही। यहां पर यह आवश्यक हो जाता है कि कुछ मुख्य-मुख्य शब्दों का ज्ञान करा दिया जावे।

५. ४. गतिक-ऊर्जा. यह गतिशील कण की ऊर्जा होती है। यदि कण की मात्रा m है और उसका वेग v है तो उसकी ऊर्जा $\frac{1}{2}mv^2$ होती है। वास्तव में यह उस कार्य के मान के तुल्य है जो इस कण को v वेग प्राप्त कराने में करना पड़ेगा। जब दो या दो से अधिक कण एक दूसरे की गति को प्रभावित करते हैं तो उनकी ऊर्जा के योग में कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि कणों में गतिक-ऊर्जा के अतिरिक्त और कोई ऊर्जा नहीं है तो सब कणों की गतिक-ऊर्जा का योग अपरिवर्तित रहता है। इसी प्रकार आवेग (momentum) कण की मात्रा तथा उसकी रफ्तार के गुणनफल के तुल्य होता है। यदि दो कण एक दूसरे पर क्रिया करते हों तो उनके आवेग भी बदल जावेंगे। और यदि इन कणों की गति देश की एक दिशा में है तो जितना आवेग एक कण खोवेगा, दूसरा उतना ही पावेगा। परन्तु यदि कणों की गति एक दिशा में नहीं है तो स्थिति कुछ जटिल हो जाती है। कणों की गति के तीन अवयव तीन दिशाओं में, जो परस्पर लम्बवत् हो, निकाल लीजिए। अब कण का एक दिशा में आवेग, उस दिशा में रफ्तार का अवयव तथा उसकी मात्रा के गुणनफल के समान होगा। अब तीनों दिशाओं में से प्रत्येक में इन कणों का आवेग उनके आपस में क्रियाशील होने से न तो कम होगा और न बढ़ेगा।

कण किसी भी प्रकार से गति में आवें, उनकी गति इन्हीं सिद्धान्तों का अनुकरण करेगी। कल्पना कीजिए कि १५० मन मात्रावाला रेल का एक डिब्बा ५ मील प्रति घंटा की रफ्तार से चलता हुआ दूसरे ६०० मन के स्थिर डिब्बे से टकराता है। मान लीजिए, ऐसा प्रबन्ध है कि टकराते ही वे दोनों डिब्बे स्वयं जुड़ जाते हैं। अब दोनों की एक रफ़्तार होगी। हम इस रफ्तार को जानना चाहते हैं। आवेग में तो परिवर्तन होने से रहा। जो आवेग पहिले १५० × ५ इकाई था, वही आवेग अब ७५० मन पर वितरित हो गया। अतः १५० × ५ = ७५० × रफ्तार, अतः रफ़्तार = १ मील प्रति घंटा हुई।

५.५. जब क्रिया बिना स्पर्श के होती है. जब दो डिब्बे टकराते हैं, उनकी रफ्तार में परिवर्तन होता है, इसका कारण समझ में आता है। परन्तु लाखों मील दूर स्थित चांद क्यों कर महासागरों में ज्वार-भाटे उठा सकता है? पृथ्वी क्यों कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुई? न्यूटन ने अपने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त में यह तो बताया कि सूर्य और पृथ्वी के बीच गुरुत्वाकर्षण बल की मात्रा इतनी होगी, परन्तु उन बलों की प्रकृति क्या होगी, यह नहीं समझाया। बिना माध्यम के चांद कैसे समुद्र में ज्वार-भाटे उत्पन्न कर देता है? ऐसी बात नहीं

है कि न्यूटन के मस्तिष्क में इन प्रश्नों ने बवंडर उत्पन्न न किया हो? न्यूटन और उसके समकालीन वैज्ञानिकों ने स्वयं ये सब प्रश्न किये थे और गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को अपनाने से पूर्व इन प्रश्नों का सही उत्तर पाना आवश्यक समझा था। न्यूटन ने तो अपने एक पत्र में ऐसी व्याकुलता भी प्रकट की थी, 'विश्वास नहीं होता कि जीव-हीन पदार्थ, बिना किसी भौतिक माध्यम के, दूसरे पदार्थ पर बिना स्पर्श के प्रभाव डाल सकता हो। मुझे तो यह विचार एकदम बेहूदा प्रतीत होता है कि गुरुत्त्वाकर्षण पदार्थ में इस प्रकार समा गया है कि पदार्थ बिना किसी माध्यम के दूसरे पदार्थ पर क्रिया कर सकता हो। मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी मनुष्य, जिसमें तनिक भी विचार शक्ति है, इस तथ्य को स्वीकार न कर सकेगा।'

५.६. **विद्युतीय एवं चुम्बकीय बल.** ठीक गुरुत्वाकर्षण की भांति ही इन बलों की वही समस्या है। प्रयोगों से हमको मालूम है कि यदि दो पिंड एक-सी विद्युत् से आवेशित हैं तो वे एक दूसरे को हटावेंगे और यदि विरुद्ध विद्युत् से तो एक दूसरे को आकर्षित करेंगे। इन दो पिंडों में क्रियाशील विद्युतीय बल भी ठीक वैसे ही होंगे जैसे गुरुत्त्वाकर्षण बल, अर्थात् इन बलों का मान भी पिंडो के बीच स्थित देशान्तर के साथ घटता है और उन पर स्थित आवेश के साथ बढ़ता है। यही बात चुम्बकीय बलों में है। प्रतीत होता है कि ये सब बल एक ही प्रकृति के हैं। हाँ, एक ही प्रकृति के हैं यदि ये पिंड अपेक्षतया गतिहीन हों। परन्तु जैसे ही गति आती है, विद्युत् आवेशित पिंड न केवल विद्युत् बल को जन्म देते हैं, अपितु चुम्बकीय बल को भी जन्म देते हैं; इसी प्रकार चुम्बकीय बल भी विद्युतीय बल प्रदान करते हैं। अब परिस्थिति बहुत पेचीदा हो जाती है। इन बलों का पूर्ण विश्लेषण करना क्लार्क मैक्सवेल जैसे गणितज्ञों ही का काम था। मैक्सवेल की यह व्यंजना बड़ी सरल तथा पूर्ण थी। हाँ, इस व्यंजना में ईथर की स्थिति को मान्यता दे रखी थी। जब तक यह ईथर थी तब तक पदार्थों का बिना स्पर्श किये क्रिया करना कुछ समझ में आता था।

अब यह आवश्यक हो गया कि ईथर के गुणों का विश्लेपण भी किया जावे। यह मान लिया गया कि यह ईथर यांत्रिक प्रकृति का है। फ़ैराडे, मैक्सवेल आदि वैज्ञानिकों ने विद्युत्-चुम्बकीय क्रियाओं को इसी ईथर के आधार पर समझने का प्रयास किया, परन्तु सफलता हाथ न आई। सापेक्षता का सिद्धान्त आया और उसने इस असफलता का कारण बताया। विद्युत्-कार्य क्रियान्वित होने के लिये कालावधि चाहते हैं। अतः यह कहा जा सकता है विद्युत् चुम्बकीय कार्य दिक्काल में चलते हैं। ईथर को माध्यम

मानकर देश तथा काल को पृथक अस्तित्व दिया गया था। माइकलसन और मॉर्ले के प्रयोग ने सिद्ध कर दिया था कि ईथर के अस्तित्व को माने चाहे न मानें, विद्युतीय क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं आता। ईथर में चाहे पृथ्वी की गति १० लाख प्रति घंटे के हिसाब से हो अथवा ईथर में स्थिर हो, घटना-चक्र में कोई अन्तर नहीं आने का। घटना-चक्र में ईथर जब कोई महत्त्व-पूर्ण काम न कर सका तब यही अच्छा समझा गया कि इसकी धारणा को त्याग ही दिया जावे।

यदि यह बात मान ली जावे कि विद्युत् क्रियाओं का सम्पादन यांत्रिक प्रणाली से होता है, तब इन क्रियाओं का प्रतिपादन देश द्वारा होना चाहिए, क्योंकि देश हर पिंड को घेरे है (वस्तुतः वस्तुओं और पिंडों के कारण ही तो देश की धारणा का जन्म हुआ है)। साथ ही साथ इन क्रियाओं का सब दिशाओं में एक-सा ही प्रभाव होना चाहिए और ये क्रियाएँ विद्युत्-आवेशित कणों (जिन पर क्रिया हो रही है) की गति से निरपेक्ष होना चाहिए। परन्तु हम पहिले ही उल्लेख कर चुके हैं कि जब विद्युत्-आवेशित कण गति में आता है तो न केवल उसमें विद्युतीय प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति होती है, अपितु वह चुम्बकीय क्षेत्र का सृजन भी करता है और इस चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता भिन्न-भिन्न बिन्दुओं पर भिन्न होती है। अतएव न तो हम विद्युतीय क्रियाओं को यह कह सकते हैं कि वे यांत्रिक क्रियाओं के अनुरूप हैं और न उनके लिये किसी ईथर जैसे माध्यम की कल्पना करने की आवश्यकता है।

यदि हम विश्व को देखें तो जहां अतिसूक्ष्म परमाणु है वहां विशालकाय नक्षत्र भी हैं। मनुष्य जाति लगभग इन दो सीमाओं के मध्य आती है। यदि विश्व का विभाजन उसके आकार के अनुसार कर दिया जावे तो तीन श्रेणियां मिलेंगी: १–परमाणु आकार का विश्व, २–मानव आकार का विश्व, ३–नक्षत्र आकार का विश्व। न्यूटन और उसके समकालीनों ने जिस गति-विज्ञान की पद्धति को जन्म दिया वह मानव तथा नक्षत्र आकार के विश्व पर तो खरी उतरी। द्वितीय अध्याय में हम लिख चुके हैं कि अणु के अन्तर में होनेवाली यांत्रिक क्रियाओं का समाधान न्यूटन साहब नहीं कर सके। सम्भव था कि उस काल का मनुष्य दूरस्थ नक्षत्रपुंजों को तो देख सकता हो, उनका अध्ययन कर सकता हो, परन्तु अपने पास बिखरे असंख्य अणुओं को उसके नेत्र न देख पाये हों। छोटी चीज़ था अणु। अदना-सी हस्ती क्या इस आलीशान इन्सान के दिमाग को आकर्षित कर सकती थी। नहीं, ऐसी बात नहीं थी। समय ने बताया कि सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु में भगवान् की उतनी ही शक्ति है जितनी विशाल पर्वतों में।

न्यूटन के गतिविज्ञान को कहां असफलता मिली, इसका उल्लेख हम पहिले भी कर चुके हैं। इसकी यहां फिर पुनरावृत्ति करना असंगत नहीं होगा। बार-बार के प्रयोगों ने हमें यह बताया कि परमाणु के अन्तर में विद्युताणु होते हैं। ये विद्युताणु ऋण-विद्युत् से आवेशित होते हैं और इस आवेश का निराकरण करने के लिये विद्युताणुओं की संख्या के समान धनाणु होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि परमाणु आवेशहीन बन जाता है। परमाणु के आकार में कभी परिवतन नहीं होता। गतिविज्ञान इसका समाधान नहीं कर सकता। इसके सिद्धान्तों से तो सब विद्युताणु एकदम स्थिर हो जाने चाहिए। अकेले परमाणु के स्थिर आकार ने ही वैज्ञानिकों को यह सोचने के लिये विवश किया कि इस गतिविज्ञान के सिद्धान्तों में संशोधन आवश्यक हो गया है। साथ-ही-साथ इस बात की भी अनुभूति हुई कि कोई भी नियम क्यों न बने, वह तीनों आकारवाले विश्वों में प्रतिपादित होना चाहिए।

हम एक दृष्टान्त और देते हैं इस पुरातन गति-विज्ञान का, जहां इसको असफलता मिली, जो छिप न सकी। मान लीजिए कि एक कमरे के फर्श पर लोहे के गेंद लुढ़क रहे हैं, एक दूसरे से उनका टकराना अस्वाभाविक नहीं है। जब एक दूसरे से टकराते हैं तो उनके वेग में अन्तर आता है, परन्तु उनकी ऊर्जा के योग में अन्तर नहीं आता। गेंदों के टकराने से ऊर्जा एक से दूसरे के पास चली जाती है। फिर भी उनकी ऊर्जा फर्श के घर्षण तथा वायु के विरोध के कारण घट रही है। कुछ देर में आप देखेंगे कि सारे गेंद अपनी-अपनी ऊर्जा खोकर लुटे-से फर्श पर असहाय खड़े हो जाते हैं। उनकी ऊर्जा का अधिकांश ताप में परिवर्तित हो जाता है। यह गतिविज्ञान कहता है कि ऐसा तो होना ही चाहिए, लगभग सारी ऊर्जा को ताप में परिवर्तित हो जाना चाहिए और दलील है कि यदि ऐसा न होता तो शाश्वत गति-शील यंत्र का आविष्कार हो ही जाता। अच्छा भाई, बात तुम्हारी हम माने लेते हैं, परन्तु एक शर्त है कि तुम इसे आगे भी निभाना, कहीं बीच में यह न कह देना कि इसके लिये हमारा सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

आइये उसी कमरे को फिर देखिए। वायु के अणुओं को लीजिए—ये भी घूम रहे हैं और एक दूसरे से टकराते भी हैं। हमारा गतिविज्ञान तो यह भविष्यवाणी करता है कि इनकी सारी ऊर्जा ताप में परिवर्तित हो जावेगी और ये सब अणु भी गतिहीन होकर फर्श पर गिर जावेंगे, ठीक लोहे के गेंदों की तरह। परन्तु हम देखते हैं कि यह तो केवल भविष्यवाणी ही है। वे तो घूमते ही रहते हैं। न उनकी ऊर्जा कम होती है और न

वे पृथ्वी पर ही गिरते हैं। शाश्वत गतिशील यंत्र असम्भव नहीं, कठिन ही है।

देखा आपने, हमारे दोस्त ने फिर धोखा खाया। आखिर क्यों बेचारे को इन दोनों क्रियाओं में असफलता का सामना करना पड़ा? आखिर क्या बात है वायु के इन परमाणुओं में, जो लोहे के गेंद में नहीं है। छोटा-सा उत्तर है इसके लिये भी। हम मानव-आकार विश्व से परमाणु-आकार विश्व में दाखिल हुए और इस दुनिया में उस दुनिया के नियम लागू नहीं होते।

हम पहिले कह चुके हैं कि न्यूटन और उसके समकालीन यह मानते थे कि बिना स्पर्श किये भी दो कणों में गुरुत्वाकर्षण जैसे बल क्रिया कर सकते हैं। इन सबकी पृष्ठ-भूमि त्रिघातीय देश का ढांचा था, जिसमें निरपेक्ष गति सम्भव मानी जाती थी। इससे पहिले के अध्याय में बतलाया जा चुका है कि यदि वस्तुएं स्थिर हों तभी यह त्रिघातीय ढांचा सफल हो सकता है। परन्तु यदि वस्तुएं—जड़ पिंड—गति में हों तब सफलता मिलना असम्भव है। चतुर्थ घात काल को तो रंग मंच पर आना ही है। साथ ही साथ हमें यह भी न भूलना चाहिए कि देश-काल के घातों में कोई अन्तर नहीं है। देश-काल की एकरूपता अविच्छिन्न है—देश-काल की पृथकता का अनुभव तो किसी द्रष्टाविशेष को ही हो सकता है। गुरुत्वाकर्षण के समाधान के लिये यही चतुर्घातीय ढांचा सबसे अधिक उपयुक्त है। इस ढांचे में न तो देश के गुण हैं और न काल के—दोनों का ऐसा यौगिक है कि उसके गुण भी अपने ही हैं। सूर्य जैसे गतिशील पिंड की स्थिति को इस अविरतता में एक बिन्दु से अनुरूपित किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न समय पर सूर्य की स्थिति भिन्न-भिन्न बिन्दुओं से अनुरूपित होगी। इन बिन्दुओं को जोड़ कर जो रेखा इस अविरतता में बनेगी उसे हम सूर्य की जीवन-रेखा कहेंगे।

जब एक लोहे का गेंद गद्दे पर रखा जाता है तो उसके चारों ओर गद्दे में गड्ढा-सा पड़ जाता है, अर्थात् गद्दे में वक्रता आ जाती है। गद्दा भी स्थिर है और गेंद भी। अब भारी वस्तु इस चतुर्घातीय अविरतता में भी अपने चारों ओर एक वक्रता पैदा करेगी। यदि यह भारी वस्तु सूर्य हो तो वह अपनी जीवन-रेखा के चारों ओर एक ऐसी ही वक्रता उत्पन्न करेगा। तो यह जो चतुर्घातीय अविरतता में वक्रता है उसका कारण उसमें स्थित पिंड है। यदि पिंड न हो तो वक्रता भी न होगी। सापेक्षता का सिद्धान्त हमें यह भी बतलाता है कि इन पिंडों की इस अविरतता में जीवन-रेखा या तो एक दम सीधी है अथवा अधिक-से-अधिक वक्रता के दृष्टिकोण से सीधी है। यदि इस अविरतता में वक्रता

उत्पन्न करनेवाले पिंड न हों तो कणों की जीवन-रेखा सीधी होगी, अर्थात् कण एक ही रफ़्तार से सीधी रेखा में चलते रहेंगे। यह हुआ न्यूटन का प्रथम नियम। और यदि वक्रता उत्पन्न करनेवाले पिंड उपस्थित हैं तो कणों का मार्ग भी वक्र प्रतीत होगा। परन्तु वास्तव में यह उनके मार्ग की वक्रता नहीं, अविरतता की वक्रता है। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं: हम जानते हैं कि हमारी पृथ्वी गोल है। उसके हर मार्ग में वक्रता होनी चाहिए। परन्तु हम फिर भी यही कहते हैं कि सीधे ही चलते रहिए, फिर अपनी जगह वापस आ जाइयेगा। इसी प्रकार इन पिंडों के मार्ग की वक्रता नहीं, वक्रता तो उस अविरतता की है जिसमें ये पिंड स्थित हैं। न्यूटन का मत था कि सीधे देश में ग्रहों का माग वक्र था, जब कि सापेक्षवाद कहता है कि नहीं, एसा नहीं, बल्कि यों कहिए कि ग्रहों का वक्र देश में सीधा मार्ग है। साथ-साथ हम एक बात का और अनुभव करते हैं कि बलों की धारणा की महत्ता समाप्त हो गई। ग्रहों की गति ज्यामिति के लिये तो एक समस्या उत्पन्न कर गई, न कि गतिविज्ञान में। न अब 'बिना स्पर्श के प्रभाव' वाला प्रश्न ही रहा, क्योंकि अब तो एक चतुर्घातीय अविरतता ने त्रिघातीय देशीय अविरतता का स्थान ग्रहण कर लिया है।

कारण और कार्य की समस्या का भी एक बहुत सुन्दर हल निकला। भूत और भविष्य सब चतुर्घातीय अविरतता के वर्तमान में लुप्त हो गये। चतुर्घातीय अविरतता को हम भूत, वर्तमान और भविष्य में नहीं बांट सकते। हम केवल यही कह सकते हैं कि विश्व की घटनाओं की जीवन-रेखा तो निश्चित हो चुकी हैं। यह जीवन-रेखा हमें बताती है कि भूत, भविष्य सब कुछ एक कोने में लिपटा रखा है, चाहे भविष्य को खोल कर देख लो, चाहे अतीत में कूद पड़ो।

५.७. परमाणु का अध्ययन. बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विज्ञान ने आकाश को छोड़ कर भूतल पर निवास करना आरम्भ कर दिया; बड़े-बड़े नक्षत्रों से दृष्टि हटा कर छोटे-छोटे परमाणु को भी देखना शुरू किया। तीन बातें बड़े महत्त्व की हुई :—

१. प्रोफ़ेसर प्लांक के मस्तिष्क में यह समस्या उठी कि आख़िर वायु में रहने वाले अणु न्यूटन के नियमों का पालन क्यों नहीं करते? इन सिद्धान्तों के विरुद्ध दो बातें थीं—या तो हम यह मान लें कि सारी ऊर्जा का ताप में परिवर्तन होना सम्भव नहीं है, या एक ऐसी सीमा है जिसके आगे परिवर्तन सम्भव नहीं है; अथवा बिना कारण के भी कार्य होते हैं यह मान लिया जावे। वास्तव में उनके अनुसन्धानों ने यह सिद्ध

किया कि हम पहिले तथ्य को मानने को विवश हैं; अर्थात् प्रकृति में अविरत गति नहीं होती।

हम कदाचित् पहिले भी कुछ ऐसा आभास देआये हैं कि १९वीं शताब्दी में यह मान्यता थी कि पदार्थ की रचना परमाणुओं से और विकिरण की तरंगों से हुई है। प्लांक के सिद्धान्त के अनुसार विकिरण भी परमाणविक है। इसका अर्थ यह है कि पदार्थों से विकिरण हौज़ से पानी की तरह धारा में नहीं निकलता, अपितु बन्दूक से निकलती हुई गोलियों की तरह होता है। यह टुकड़ों में विस्तृत होता है। इन टुकड़ों को प्लांक 'Quanta' कहता है, जिन्हें हम अपनी भाषा में सरलता की दृष्टि से 'कण' कह सकते हैं। प्रोफ़ेसर बोर ने इस तथ्य की पुष्टि की। यदि हम एक बहुत उम्दा सूक्ष्म-दर्शक से परमाणुओं को देखें तो मालूम होगा कि उनकी रफ़्तार रेलगाड़ी की तरह एक-सा न हो कर कंगारू की छलांग जैसी है।

२. १९०३ में रदरफोर्ड ने यह सिद्ध किया था कि कुछ तत्त्व ऐसे हैं जिनकी नाभियां स्वयं ही टूटती रहती हैं। आरम्भ में देखने पर मालूम देता है कि प्लांक और रदरफोर्ड में कोई एकता नहीं है। और इस एकता का पता लगाने में १४ वर्ष लगे भी। ऐसे तत्त्वों के ऐसे गुण को रेडियोधर्म कहते हैं। रदरफोर्ड ने कहा कि रेडियोधर्मी तत्त्वों की नाभियां टूटने का कोई कारण नहीं हैं। यह तो १९ वीं शताब्दी के विज्ञान से और भी दूर हट गई—बिना कारण के कार्य हो रहा है। मनुष्य को इससे संकेत मिला कि प्रकृति के मूल नियमों में कारण और कार्य का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

३. १४ वर्ष पश्चात् १९१७ में आइन्स्टीन ने इन दो खोजों में सम्बन्ध स्थापित किया। कंगारू की कूद जैसी अणुओं की गति तथा रेडियोधर्मी तत्त्वों की नाभियों का टूटना अब एक ही नियम के अधीन हो गये। वास्तव में रेडियोधर्मी तत्त्वों में एक विशेष प्रकार के कंगारू विद्यमान थे, जो अन्य जातियों से शक्तिशाली थे।

कंगारू की कूद-सम्बन्धी नियम बड़े सरल हैं। कुछ कंगारू कुछ समय में कूदते हैं और दूसरे कुछ समय में। इसमें कभी परिवर्तन नहीं आ सकता। जब तक कंगारू कूद न जावे तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वे कूदेंगे कि नहीं। किसी भी प्रकार आप कंगारू को, अपनी मरज़ी के माफ़िक नहीं कुदा सकते। दोनों बातें एक साथ हुईं, कारण और कार्य का भेद हट गया, अविरतता के स्थान पर क्वांटा आ गये। **विज्ञान में एक द्वार से जैसे ही छिन्नता ने प्रवेश किया, दूसरे द्वार से 'कार्य और कारण' का सिद्धान्त ग़ायब हो गया।**

प्लांक का कण-सिद्धान्त. प्लांक ने विकिरण की परमाणविकता को सिद्ध किया। परमाणुओं के आधार पर पदार्थ को ९२ श्रेणियों में विभाजित किया गया है, परन्तु विकिरण को इस सीमा में नहीं रखा जा सकता। विकिरण अनन्त है, जितनी उनकी तरंगों की विभिन्न लम्बाइयाँ हैं उतने ही विकिरण हैं। प्लांक ने प्रत्येक लम्बाई के लिये एक क्वांटा निश्चित किया। जितनी लम्बाइयाँ हुई उतने ही क्वांटा। एक विकिरण कण में स्थितिक-ऊर्जा अधिक होती है, यदि विकिरण की तरंग की लम्बाई कम हो और यदि इसका उल्टा हो तो कम होती है। यदि विकिरणों के विस्तृत होने की गति एक हो तो लम्बाई और आवृति में सीधा सम्बन्ध है। वास्तव में ऊर्जा और प्लांक की राशि h में निम्न सम्बन्ध है

$$E = h f.$$

यहाँ E विकिरण कण की ऊर्जा, f उसकी आवृति संख्या और h प्लांक की निश्चित राशि है। यह h सब प्रकार के विकिरणों में पाया जाता है। इसका मान बहुत ही न्यून है (लगभग ·००० , ००० , ००० , ००० , ००० , ००० , ००० , ००० , ०० ६६२४ = $१०^{-३०}$ × ६६२४)। इसका इतना मान क्यों है, यह आज तक मालूम नहीं हो सका। प्रकाश के वेग की भांति प्लांक की राशि भी एक रहस्य है। ऐसी ही बातों को देखकर एक बार सर एडिंगटन ने कहा था कि प्रकृति का प्रत्येक सत्य नियम इस तार्किक बुद्धि को असंगत ही प्रतीत होता है, प्लांक का नियम भी एक ऐसा ही सत्य नियम है।

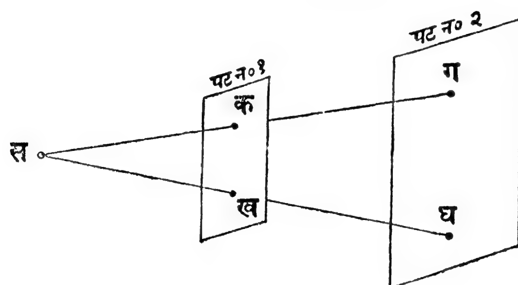
५·८. फोटो-विद्युतीय प्रभाव (Photo-Electric Effect). प्लांक का कण-सिद्धान्त विकिरण की प्रत्येक समस्या का समाधान न कर सका। बिल्कुल दूसरी असंगत प्रतीत होनेवाली दिशाओं से भी इस सिद्धान्त की पुष्टि हुई। जब नील लोहितोत्तर विकिरण (Ultra-Violet radiation) किसी धातु की प्लेट पर गिरता है, तब धातु की सतह से विद्युताणुओं की एक धारा निकलती है। अब यदि विकिरण पर तरंग-सिद्धान्त लागू किये जावें तो कोई कठिनाई नहीं होगी। जब विकिरण पड़ता है तो परमाणु में निहित विद्युताणुओं की स्थिति ठीक उसी प्रकार डांवाडोल हो जाती है जिस प्रकार अंधेरे में बैठी शहद की मक्खियों पर टार्च की रोशनी डालने पर उनमें हलचल मच जाती है। यदि विकिरण तीव्र हुआ तो वे परमाणु को छोड़कर

भाग सकते हैं। फिर भी यदि यही इसका वास्तविक कारण है तो विकिरण की तीव्रता को कम करने से दो ही बातें हो सकती हैं: या तो केवल वे ही विद्युताणु परमाणु को छोड़ें जो निर्बल हैं अथवा कोई भी न आवे। परन्तु विद्युताणु सब एक से होते हैं। हो सकता है कि जो विद्युताणु बाहर आवें उनमें ऊर्जा की मात्रा कम हो। परन्तु ऐसा नहीं है। पूर्ण ऊर्जा के साथ विद्युताणु आते हैं। हाँ, संख्या अवश्य कम हो जाती है। आनेवाले विद्युताणु और विकिरण की तीव्रता आपस में अनुपातीय होते हैं। इस प्रकार अपनी मातृभूमि से बेदखल हुए विद्युताणुओं में ऊर्जा की मात्रा विकिरण का पूरा एक 'क्वांटा' होती है। हम यह पहिले ही बता चुके हैं कि कम आवृतिवाले विकिरण के क्वांटा में ऊर्जा की मात्रा कम होती है, और यह आवृति इतनी कम हो सकती है कि परमाणु एक पूरा क्वांटा ले भी ले और कोई विद्युताणु न निकल पावे। इस आवृति को **सीमान्त आवृति** कहते हैं। इस प्रकार विकिरण विद्युताणुओं को उसी समय बाहर निकालेगा जब उसकी आवृति इस सीमान्त आवृति से अधिक हो। ऊर्जा की वह मात्रा, जो पदार्थ से विद्युताणु निकालने में समर्थ है, पदार्थ के गुणों पर निर्भर करती है। भिन्न-भिन्न पदार्थों की विभिन्न सीमान्त आवृतियाँ होंगी। इनका कारण नीले और जामनी प्रकाश की किरणें हैं। ये अन्य दूसरी किरणों की अपेक्षा फोटोग्राफ़िक प्लेट पर अधिक प्रभाव दिखाती हैं। जब विकिरण की आवृति इस सीमान्त आवृति से अधिक होती है, तभी विद्युताणु निकल पड़ते हैं और उनकी गतिक-ऊर्जा विकिरण की आवृति और सीमान्त आवृति के अन्तर के अनुपातीय होती है। सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही दृष्टि से यह ठीक उतरती है। विज्ञान में इस घटना को Photo-Electric कहा गया है। विकिरण द्वारा एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को ऊर्जा का हस्तांतर धारावाही न होकर कणों में (क्वांटा में) होता है। यह बात केवल Photo-Electric आचरण में ही नहीं पाई जाती, अपितु ऊर्जा के हर हस्तांतर में होती है। कहीं भी क्वांटा (कण) के टुकड़े नहीं किये जा सकते। यह हमारे उस चित्र को भी पूरा कर देता है जिसमें ऊर्जा का मूल 'कण' माना गया है, जिस प्रकार पदार्थ का मूल विद्युताणु माना गया है।

प्लांक ने यह बतलाया था कि परमाणु द्वारा विकिरण कणों (Quanta) में ही संभव है। आइन्स्टीन ने इस प्रकार के निकले हुए कणों को विकिरण का समूह माना और उन्हें 'प्रकाश-कण' (Photon) की संज्ञा दी। विकिरण को इन प्रकाश-कणों की बौछार माना गया। जब यह बौछार किसी धातु की सतह पर पड़ती है तो प्रकाश-

कण एक विद्युताणु से जाकर टकराता है और उसको निकाल देता है। अब यदि इस विकिरण की तीव्रता को कम कर दिया जावे तो उसका अर्थ होगा, प्रकाश-कणों की कमी अर्थात् विद्युताणु भी कम संख्या में निकलेंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि विद्युताणु निकलें ही नहीं। यदि विकिरण की ऊर्जा को बढ़ा दें तो निकलनेवाले विद्युताणु भी उसी अनुपात से बढ़ जावेंगे। स्पष्ट है कि स्वतंत्र विद्युताणु विकिरण-कण नहीं ले सकता। जब विकिरण-कण ऐसे विद्युताणु से टकराता है तो दोनों की गति की दिशाओं में परिवर्तन हो जाता है। १९२५ में कॉम्पटन और साइमन ने ऐसे विद्युताणु का, टक्कर के पूर्व और पश्चात्, चित्र लेने में सफलता प्राप्त की और आइन्स्टीन के इस चित्र की पुष्टि की।

५.९. विकिरण का तरंगात्मक आचरण. चित्र में देखो 'स' प्रकाश का स्रोत है। यह प्रकाश एक रंग का है। प्रथम पट में 'क' 'ख' पर दो छिद्र इस प्रकार



चित्र ११.

के हैं कि उनके अन्तर 'क' 'ख' को इच्छानुसार कम या अधिक किया जा सकता है और दूसरे पट पर 'ग' और 'घ' ऐसे बिन्दु हैं जो 'स' 'क' और 'स' 'ख' को आगे बढ़ाने से प्राप्त हुए हैं। 'क' और 'ख' पर केवल सुंई की नोक के बराबर छेद है।

जब 'स' से प्रकाश किरणें निकलती हैं तब 'ग', 'घ' प्रकाशित हो जाते हैं और बाकी सारा पट अंधकारमय ही रहता है। हम कह सकते हैं कि प्रकाश-कण 'क' 'ख' से होकर पट तक पहुंच गये। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक 'ग' 'घ' को देखें तो मालूम होगा कि 'ग' और 'घ' पर न केवल वृत्ताकार प्रकाशित भाग है वरन् वृत्ताकार प्रकाशित एवं अंधकारमय भाग की पट्टियाँ हैं। एक प्रकाशित दूसरी अप्रकाशित। इसी प्रकार और बहुत-सी पट्टियाँ हैं। अब यदि 'क' 'ख' को एक दूसरे के निकट ले जावें तो, पहले तो

'ग' 'घ' एक दूसरे के निकट जाते मालूम होंगे, परन्तु जैसे ही अधिक निकट पहुंचेंगे, 'ग' 'घ' पर प्रकाश का एक और आकार हो जावेगा। 'क' 'ख' दूरी के कुछ मान के लिये तो 'ग' 'घ' पूर्णतया अंधकार में भी हो जावेंगे। इस स्थिति में होने पर 'ख' छिद्र को बन्द कर दीजिए और आप देखेंगे कि 'ग' तुरन्त प्रकाशित हो जायगा; यदि फिर 'ख' को खोल देंगे तो 'ग' पर फिर अंधकार छा जायगा।

इन परिणामों का समाधान न तो प्लांक का क्वांटा सिद्धान्त ही कर सका और न आइन्स्टीन ही। विकिरण को यदि तरंग-सिद्धान्त से देखा जाय तो तुरन्त समाधान हो जायगा। यह सिद्धान्त तो स्पष्ट शब्दों में कहता है कि 'ग' पर प्रकाश 'क' और 'ख' दोनों के कारण है और विज्ञान में यह घटना नई नहीं है कि प्रकाश के दो स्रोत अन्धकार उत्पन्न करें। एक तरंग का Crest और दूसरी का Troughs जब मिलते हैं तो निराकरण मात्र होता है।

५.१०. कण और तरंग-सिद्धान्त. विकिरण के ये दो चित्र बड़े ही रहस्यमय हैं। विद्युताणुओं के निकलने को तरंग-सिद्धान्त न समझा सका और ऊपर दिये हुए आचरण को समझाने में कण-सिद्धान्त असमर्थ रहा। एक चित्र में विकिरण को 'कण' का रूप दिया गया है, दूसरे में 'तरंग' का। जब विकिरण पदार्थ पर पड़ रहा हो तब कण-रूप अधिक उपयुक्त है और जब विकिरण देश से होकर गुजर रहा हो तब तरंग-रूप। कुछ समय तक तो यह मान्यता बनी रही कि प्रकाश में दो रूप होने चाहिए; एक कण-रूप और दूसरा तरंग-रूप। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि ऐसा नहीं हो सकता। वास्तव में कण-रूप और तरंग-रूप दो भिन्न रूप नहीं हैं, अपितु एक ही रूप के दो पहलू हैं। ये दो अधूरे चित्र हैं, जो विशेष परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं और परस्पर पूरक भी हैं। जैसे ही प्रकाश अपना कण-रूप प्रदर्शित करता है, उसका तरंग-रूप लुप्त हो जाता है और जब तरंग-रूप आता है तब कण-रूप का कहीं पता नहीं लगता। दोनों रूप कभी एक साथ नहीं आ सकते।

तरंग सिद्धान्त अपने क्षेत्र में बहुत कुछ सफल रहा, परन्तु उसकी कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जिनके ऊपर वह सफलता न पा सका। हम एकदम तरंग-सिद्धान्त को छोड़कर कण-सिद्धान्त को नहीं अपना सकते। साथ ही साथ हम यह भी कहेंगे कि जब तरंग-सिद्धान्त यह कहता है कि प्रकाश की तरंगें चारों दिशाओं में फैल जानी चाहिए तो फिर वे कैसे इकट्ठा होकर पदार्थ के अणु पर आक्रमण कर विद्युताणु को बाहर निकाल सकती हैं? कल्पना कीजिए 'स' से एक प्रकाश-कण

निकला। अब यदि तरंग-सिद्धान्त सत्य हो तो कुछ भाग तो 'क' से निकल जावेगा, कुछ 'ख' से और कुछ इसी पट में रह जायेगा। हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह सब होने के बाद भी वे किसी जादू के कारण इकट्ठा हो सकेंगे। हमारा चित्र अधूरा ही रह गया।

तरंग सिद्धान्त को सबसे अधिक प्रोत्साहन मैक्सवेल द्वारा प्राप्त हुआ। मैक्सवेल का प्रकाश का विद्युत-चुम्बकीय सिद्धान्त सर्वविदित है। इसके अनुसार ये तरंगें ईथर में बहती हैं और क्रमशः विद्युतीय तथा चुम्बकीय गुणप्रधान होती हैं। काल की प्रत्येक अवधि पर और ईथर के प्रत्येक बिन्दु पर एक निश्चित चुम्बकीय तथा एक निश्चित विद्युतीय बल रहता है। परन्तु जब इसकी पृष्ठ-भूमि में स्थित निरपेक्ष देश ही न रहा तो इन विचारों की मान्यता भी कम हो गई। सापेक्षता ने ईथर का हनन कर लिया और यह बतलाया कि न केवल भिन्न-भिन्न दृश्य एक ही काल पर तथा एक ही बिन्दु पर विभिन्न बलों का मापन करेंगे, अपितु उनके माप भी पूर्णतया सही होंगे। इस प्रकार के विद्युत् तथा चुम्बक के बल वास्तविक नहीं हैं। उनका कोई अस्तित्व भी नहीं है। वे तो केवल हमारे मस्तिष्क की उपज हैं, जिनका निर्माण हमने तरंग-सिद्धान्त की पुष्टि के लिये किया। वास्तव में यह एक ऐसा ही यांत्रिक प्रयास था जैसा कि बिना स्पर्श के प्रभाव को समझाने के लिये किया गया था। इसके समाधान के लिये तो हमें कुछ अधिक तर्कपूर्ण तथा युक्तिपूर्ण सिद्धान्त की खोज करनी होगी।

५.११. अनिश्चितता का सिद्धान्त. अब फिर उसी प्रयोग की ओर लौट चलें। प्रकाश का एक कण 'स' स्रोत से निकला। पट पर वह कहां गिरेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। कण-सिद्धान्त कणों के मार्ग के विषय में कुछ नहीं बताता। इसका एक यही उत्तर है कि कहा नहीं जा सकता कि वह कहां गिरेगा। हां, इतना अवश्य है कि यह कण सदैव एक बिन्दु पर नहीं गिरेगा। फिर यदि कण लाखों की संख्या में निकल रहे हों तो कहीं अधिक कण जायेंगे, कहीं पर कम। जहां अधिक जावेंगे वहां अधिक प्रकाश होगा। यों उस स्थान पर भी कुछ न कुछ कण पहुंचेंगे ही, जहां प्रकाश बहुत ही क्षीण है। अब यदि हम विकिरण पर ध्यान दें और इस बात का पता लगाना चाहें कि किस स्थान पर कितना प्रकाश रहेगा—अर्थात् किस स्थान पर कितने कण आवेंगे तो हम निश्चित रूप से पता लगाने में असमर्थ हैं। हाँ, उसकी सम्भावना ज्ञात कर सकते हैं। इस सम्भावना से हम केवल यही ज्ञात कर सकते हैं कि अमुक बिन्दु पर कितना प्रकाश हो सकता है, न कि कितना प्रकाश होगा।

५.१२. ज्ञान की सीमा. हम इस रूपक को तनिक और आगे बढ़ा सकते हैं। तरंग-सिद्धान्त की तरंगों को हम सम्भावना की तरंग मान सकते हैं। देश में जो तरंगें फैली हैं वे प्रकाश-कण के गति-क्षेत्र का निर्धारण करती हैं, अतः इस क्षेत्र के किसी एक बिन्दु पर जो तरंगों की intensity होगी उसे हम प्रकाश-कण के उक्त बिन्दु पर होने की सम्भावना मान सकते है। ये तो हुईं सम्भावना की तरंगें। इन्हीं तरंगों को हम अपने ज्ञान की तरंग भी मान सकते हैं। प्रकाश-कण के विषय में हम इतना तो जान ही सकते हैं कि प्रकाश-कण कुछ निश्चित क्षेत्र में होगा। इस क्षेत्र का निर्धारण तरंगें ही करती हैं। यदि 'अ' व 'ब' दो क्षेत्रों में से तरंगें 'अ' में अधिक घनीभूत हो गई हैं तो हम कह सकते हैं कि 'अ' में 'ब' की अपेक्षा प्रकाश-कण के होने की सम्भावना अधिक है। इस प्रकार तरंगों की भी दो व्याख्याएं हुईं—एक में सम्भावना का निरूपण होता है तथा दूसरी में ज्ञान का। स्पष्टता के लिये नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

हमें दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब क्यों दिखाई देता है? दर्पण के पीछे की ओर एक बड़ी पतली सतह चांदी की होती है। यही सतह प्रकाश किरणों को वापस भेज देती है। यह सतह इतनी पतली हो सकती है कि प्रकाश का केवल आधा भाग ही वापस आ सके और शेष आधा भाग सीधा चला जावे। इससे हमें यह अर्थ लगाना चाहिए कि आधे क्वांटा तो बाहर चले जाते हैं और आधे वहीं रह जाते हैं। और यदि प्रकाश का केवल एक ही कण जावे तब यह सम्भव नहीं है कि आधा कण बाहर जावे और आधा इधर ही रह जावे; क्योंकि 'कण' का विभाजन नहीं हो सकता। तब हम यही कह सकते हैं कि ५० प्रतिशत सम्भावना है कि कण दर्पण से बाहर निकल जावें और इतनी ही इसकी भी सम्भावना है कि वह वापस आ जावें। अब यदि दर्पण के पहिले ही परावर्तन के मार्ग में एक पट लगा दिया जावे तो यह सम्भव है कि प्रकाश-कण इसी पट पर आकर टकरावें जिससे बाहर निकलनेवाली तरंगों की तीव्रताशून्य हो जावेगी। इस तथ्य को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रकाश-कण के दर्पण से बाहर निकलने की सम्भावना शून्य हो गई है, या यों भी कह सकते हैं कि प्रकाश-कण इस राह का मुसाफिर नहीं है। और यदि यह मालूम हो कि प्रकाश-कण पट पर नहीं पहुंचा, तब परावर्तित किरणें समाप्त हो जावेंगी और निकली हुई तरंगों की तीव्रता बढ़ जावेगी।

सम्भावना का सिद्धान्त हमारे दिन प्रति दिन के जीवन में अपनी विशेषता रखता है। कितनी दुर्घटनाएं प्रति दिन होती रहती हैं? हज़ारों आदमी इन्हीं दुर्घटनाओं के

शिकार होते हैं? यदि इन दुर्घटनाओं को निश्चित मान लिया जावे तो न तो कोई रेलगाड़ी में सफ़र करेगा और न किसी का दिया हुआ खाना खायेगा विष के सन्देह से। परन्तु संसार में इन दुर्घटनाओं की किसी व्यक्तिविशेष पर घटित होने की सम्भावना शून्य के लगभग होती है और यही कारण है कि मनुष्य अधिक भीत नहीं होते। मान लीजिए, लन्दन से एक जलयान बम्बई को आ रहा है। यान किस समय कहां पर है, यह यान का संचालक सूर्य को देखकर बता सकता है और वह यान की स्थिति को दिये हुए नक़्शे में बना देता है। परन्तु यदि सूर्य निकला ही न हो तब संचालक निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि उसकी स्थिति कहां पर है? वह क्या करेगा? औसत रफ्तार के आधार पर वह उस नक्शे में एक वृत्त खींच देगा—बिन्दु नहीं लगावेगा। वृत्त का अर्थ यह हुआ कि यान इस समय इस क्षेत्र में कहीं भी हो सकता है। मान लीजिए, दूसरे दिन भी सूर्य देव के दर्शन नहीं हुए। यदि पहिले दिन का वृत्त ५ मील के अर्धव्यास का था तो आज का वृत्त १० मील अर्धव्यास का होगा। इसी प्रकार अगले दिनों में भी यदि सूर्य के दर्शन न हुए तो पांचवें दिन इस वृत्त का अर्धव्यास २५ मील हो सकता है। जब तक अनुमान रहा यह वृत्त भी तरंगों की भांति चलता ही रहा। अनिश्चितता बढ़ती ही रही। मान लीजिए कि इस अनिश्चतता से वृत्त के आधे भाग में कोई टापू आता था। संचालक को मालूम है कि कोई ऐसा टापू नहीं आया तो वह एकदम उस आधे भाग को काट देगा। यह थोड़ा ज्ञान भी अनिश्चितता को आधा कर सकता है। और यदि अब कोई और टापू दिखाई दे जावे तो अनिश्चितता तुरन्त समाप्त हो जावेगी। यान की स्थिति का ठीक ज्ञान हो गया।

ठीक इसी प्रकार की अनिश्चितता का साम्राज्य भौतिक संसार में है। इस उदाहरण में यान को प्रकाश-कण, सागर को देश, टापू को पट मान लें, तब हम देखते हैं कि सागर का अस्तित्त्व है, भूमि है, प्रकाशकण है और यान है, अस्तित्त्व है और हमारे दैनिक जीवन के देश में विचरते भी हैं। परन्तु यान के संचालक को जिस चीज़ से अपने यान की स्थिति का ज्ञान होता है उसको निरूपित करनेवाली तरंगें देश में विचरण नहीं करतीं, अपितु उनका विहारस्थल तो संचालक का नक्शा है। इस प्रकार वह देश, जिसमें हमारे प्रकाश-कण के ज्ञान को निरूपित करनेवाली तरंगें विचरण करती हैं, साधारण भौतिक देश नहीं है; अपितु ऐसा विचारात्मक देश है जिसका निर्माण गणित की सहायता से हमने अपनी सुविधा के लिये कर लिया है। यह तो केवल उस देश की गणितात्मक प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार प्रकाश-कण जिस देश में विचरण करते

माने जाते हैं वह भौतिक है तथा उसका अस्तित्त्व है; और तरंगों का प्रवाह जिस देश में होता है वह तो हमारे मस्तिष्क का तर्कजाल है। तरंगों का विचरण त्रिघातीय देश में माना गया; और इस देश को दैनिक जीवन के देश से अभिन्न बतलाया गया।

५·१३. क्या 'कार्य' एवं 'कारण' का सम्बन्ध प्रकृति में अनिवार्य रूप से पाया जाता है. विकिरण की पारमाणुकता (Atomicity) से पूर्व यह मान्यता थी कि प्रकृति में एकरूपता है और यदि कारण एक से हैं तो कार्य भी एक से ही होंगे। आज भी बहुत लोग इसे ही मान्यता देते हैं। कारण यह है कि ऐसे लोगों ने अभी परमाणु का दर्शन नहीं पढ़ा। नक्षत्रपुंजों का तो चप्पा-चप्पा छान डाला, परन्तु परमाणु को उनके नेत्र न देख सके। यदि प्रकृति में ऐक्य होता तो प्रत्येक प्रकाश-कण एक ही बिन्दु पर जाकर गिरता। सब प्रकाश-कण एक ही स्रोत से आ रहे हैं। और यदि एक ही प्रकाश-कण बार-बार स्रोत से मिलकर पट पर टकरावे तो आप देखेंगे कि प्रत्येक बार वह भिन्न बिन्दु पर गिरता है। इसी प्रकार यदि एक-एक करके प्रकाश-कण दर्पण पर गिरें तो आधे बाहर निकल जावेंगे और आधे वापस लौट आवेंगे। प्रत्येक प्रयोग में आधे ही बाहर निकलेंगे, परन्तु कौन से आधे बाहर निकलेंगे, यह नहीं कहा जा सकता।

प्रकृति के ऐक्य और कार्य तथा कारण के सम्बन्ध में विश्वास करनेवाले इसके विरुद्ध यह तर्क प्रस्तुत करेंगे कि प्रत्येक प्रयोग में परिस्थिति बदल गई—एक-सी परिस्थिति न रही—एक-से कारण न रहे तो एक-सा कार्य कहां से हों? यहां पर यह बात कुछ जमती है। परन्तु विकिरण की दशा में हम यही देखते हैं कि जो प्रकाश-कण बाहर निकलते हैं और जो वापस लौट आते हैं, वे एक ही राह के राहगीर हैं। फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि कौन-से बाहर निकलेंगे और कौन वापस आवेंगे। विकिरण की पारमाणुकता ने तो हमारे ज्ञान में आमूल परिवर्तन किये हैं; प्रकृति में ऐक्य नहीं है और प्राकृतिक घटनाएं आवश्यक रूप से कार्य और कारण के सम्बन्ध से नहीं बंधी हैं। और यदि कार्य और कारण का सम्बन्ध हो भी तो वह हमारी बुद्धि के परे हैं।

ऐसी बात नहीं है कि पदार्थ की पारमाणविकता से विकिरण की पारमाणविकता अधिक आश्चर्यजनक या उपयोगी हो। सत्य तो यह है कि पदार्थ की पारमाणविकता ने भी हमारी मान्यताओं में ऐसे ही आमूल परिवर्तन किये हैं।

५·१४. बोर का सिद्धान्त. अब हम क्वांटा-सिद्धान्त के विकास की ओर ध्यान देते हैं। परमाणु-वर्णपट (Atomic spectra) को अभी तक कोई समझा नहीं सका था। १९११ में रदरफोर्ड ने परमाणु की तुलना सौर परिवार से की थी। परमाणु के केन्द्र के चारों

ओर विद्युताणु परिक्रमा कर रहे हैं। यह हम पहिले ही बता आये हैं कि परमाणु का यह रूप पुराने गतिविज्ञान के नियमों में ठीक नहीं बैठता था। इस गतिविज्ञान के अनुसार तो वे अपनी चक्रीय गति के कारण लगातार ऊर्जा खोते रहते हैं जिसके कारण कुछ ही काल पश्चात् उनको गतिहीन होना पड़ता है। बोर ने परमाणु के रूप की इस प्रकार कल्पना की—मान लो, उदजन का परमाणु है जिसमें एक अकेला विद्युताणु नाभि की परिक्रमा कर रहा है। बोर ने कहा कि इस परमाणु का आकार केवल इतना हो सकता है, जिसमें ऊर्जा-कणों (क्वांटा) की पूर्ण संख्या हो, जैसे १, २,······इत्यादि ऊर्जा-कण उस परमाणु में हो सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि परमाणु का आकार घट तो सकता है, परन्तु उसमें ऊर्जा (कम से कम ऊर्जा का एक कण) अवश्य रहेगी जिसके कारण विद्युताणु की नाभि के चारों ओरवाली प्रतिक्रिया बन्द न हो सकेगी। इस प्रकार अब न तो परमाणु की ऊर्जा का निरन्तर ह्रास होता है और न उसका आकार ही नष्ट होता है। परन्तु इनके सिद्धान्त के अनुसार परमाणु में विकिरण नहीं हो सकता, जब कि यह तथ्य है कि उदजन का परमाणु विकिरण ले भी सकता है और दे भी सकता है। अतः उसने यों संशोधन किया कि विद्युताणु के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह एक ही दायरे में रहे, एक ही मार्ग का अनुसरण करे। इस तथ्य को हम प्रयोग से सिद्ध कर सकते हैं। क्वांटा-सिद्धान्त के हर उदाहरण में हमें विकिरण की आवृति मालूम होती थी, तब हम विकिरण करनेवाले पदार्थ की ऊर्जा निकाल लेते थे निम्न सम्बन्ध से

$$\text{ऊर्जा} = h \times \text{आवृति}$$

परन्तु परमाणु में हमें आवृति का ज्ञान नहीं है। बोर ने कल्पना की कि जब भी विद्युताणु अपने निश्चित मार्ग से दूसरे मार्ग में प्रवेश करता है तब या तो वह ऊर्जा लेता है अथवा देता है। यह लेन-देन ऊर्जा का एक कण होता है। बोर ने इस ऊर्जा को पहिले माप लिया और फिर इस हिसाब से जो आवृति आई वह ठीक उतनी ही थी जितनी उदजन के वर्णपट से आई थी।

उदजन का यह वर्णपट (Spectrum) सबसे सरल होता है और विज्ञान में इसे रेखीय वर्णपट कहा जाता है। अंधेरी कोठरी में रखे पट पर इसका वर्णपट भिन्न-भिन्न पट्टियों में बंट जाता है जिसका अर्थ होता है कि विकिरण की भिन्न-भिन्न आवृत्तियां हैं,

और इन आवृतियों के बीच कोई विकिरण नहीं है। ऐसा क्यों होता है? विकिरण में छिन्नता क्यों है? इसका कारण यही है कि वर्णपट पर जिस ऊर्जा का दिग्दर्शन हुआ है वह किसी धारा से तो आई नहीं, अपितु वह तो विद्युताणु की उस कूद से आई है जो उसने अपने मार्ग को त्याग कर दूसरे मार्ग को ग्रहण करने में ली।

उसी वर्ष कुछ दूसरे प्रयोग भी हुए, जिन्होंने बोर के सिद्धान्त की पुष्टि की। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि बोर के सिद्धान्त ने यह सिद्ध कर दिया कि परमाणु का विकिरण, धारा-प्रवाह में नहीं होता; अपितु बन्दूक से निकलती गोलियों की तरह छिन्न-भिन्न रूप में होता है। परन्तु परमाणु अपनी ऊर्जा को कण-कण करके खोता है; साथ ही यह भी सच है कि उसकी ऊर्जा शून्य नहीं हो सकती। ऊर्जा की मात्रा कणों की पूर्ण संख्या में ही सम्भव है।

५. १५. रेडियोधर्म के मूल सिद्धान्त. इन सिद्धान्तों की कुछ अपूर्ण झलक हम पहिले भी देख चुके हैं। फिर भी, चूंकि इन सिद्धान्तों पर कण-सिद्धान्त का एक क्रान्ति-कारी प्रभाव पड़ा है, हमें इस पहलू में इनका विवेचन कर लेना ही चाहिए। प्रत्येक रेडियोधर्मी तत्त्व के परमाणु में नाभि होती है, जिसके चारों ओर विद्युताणु परिक्रमा करते रहते हैं। इसकी नाभि में कई प्रकार के कण होते हैं। इन अवयव-कणों की एक विशेष बात यह होती है कि ये किसी भी समय अपनी नाभि की व्यवस्था बदल सकते हैं और इस व्यवस्था के परिवर्तन में इनमें से या तो एक भारी कण α कण या एक विद्युताणु β कण निकल सकती है, या एक घनी आवृतिवाले विकिरण का कण (γ — किरण) निकल सकता है। इन तीनों क्रियाओं को रेडियोधर्मी क्रिया की संज्ञा दी जाती है। इन क्रियाओं से मूल परमाणु में परिवर्तन हो जाता है। परमाणु बदलता है, नाभियाँ बदलती हैं—इस परिवर्तन की रफ्तार को हम किसी भी प्रकार नियंत्रित नहीं कर सकते। रेडियम के एक मिलीग्राम में लगभग ५००,०००,००० परमाणुओं की नाभियों में प्रति सेकंड परिवर्तन होता है। न तो हम इस परिवर्तन को रोक सकते हैं और न उनमें कोई परिवर्तन ही ला सकते हैं। रेडियोधर्मी तत्त्वों की प्रत्येक भौतिक क्रिया के विषय में यही सत्य है। तभी तो कहते हैं कि ये क्रियाएँ स्वयं ही होती हैं। रेडियोधर्मी तत्त्वों का यह चित्र एकदम नवीन था; ऐसा चित्र प्रकृति में पहिले कभी नहीं देखा गया था।

यह चित्र अपने साथ बहुत-से प्रश्न लाया। सवाल था कि किस परमाणु की नाभि पहिले टूटेगी और किस की बाद में? ५० करोड़ नाभियाँ टूटनेवाली हैं दूसरे

सेकंड में ; कौन-कौन परमाणु इस ५० करोड़ नाभियों में आवेंगे, कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता इसके विषय में। यदि हम कुछ भी निश्चय पूर्वक कह सकते तब तो यह सम्भव था कि रेडियम की भौतिक दशा में परिवर्तन करने के उपरान्त हम उसके परमाणु की नाभियों की टूटने की क्रियाओं पर कुछ नियंत्रण पा सकते ; परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं है। न यही बात है कि नाभियों का टूटना परमाणुओं के विगत इतिहास पर निर्भर करता है ; क्योंकि यदि ऐसा होता है तो परमाणुओं का विगत इतिहास उनकी नाभियों की टूटने की क्रिया को बदल सकता। दूसरे परमाणु से बनाये गये रेडियम के परमाणुओं की नाभियाँ भी उसी गति से टूटती हैं जिस गति से लाखों वर्ष पुराने रेडियम के परमाणुओं की। हमें तो यही समझना चाहिए कि जब नाभियाँ टूटती हैं तो पुराने और नये का प्रश्न नहीं होता ; सभी आते हैं। क्यों एक विशेष परमाणु की नाभि टूट गई और दूसरे की नहीं—यह कार्य प्रकृति में बिना कारण के ही (कम से कम अब तो) प्रतीत होता है।

विज्ञान में तो इस तथ्य की महत्ता रही ही, दर्शन में इसका महत्व बहुत बढ़ गया ; क्योंकि विश्व की एक दुनिया से (परमाणु-आकार) कार्य और कारण का भेद हट गया। लगभग ५-६ लाख रेडियम के परमाणु होंगे इस कमरे में। यदि उनकी गति पुराने गति-विज्ञान के नियमानुसार संचालित हो तो लैप्लास जैसा कोई गणितज्ञ प्रत्येक परमाणु के पूरे भविष्य को अपने गणित की सहायता से बता सकता है। परन्तु नई खोजों से यह सिद्ध हो गया कि यह जानते हुए भी कि एक परमाणु की नाभि आज टूटेगी, एक की कल, तथा एक की परसों और इसी प्रकार दूसरों की भी, फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि कौन-सा परमाणु आज अपनी नाभि तोड़ना स्वीकार करेगा। हमें यही सोच लेना चाहिए कि एक अज्ञेय शक्ति है जो इन क्रियाओं को अपनी इच्छा के अनुसार कर रही है।

५. १६. क्वांटा और रेडियोधर्म सिद्धान्तों में समन्वय. देखने और सोचने पर तो एक साधारण जन को इन दो सिद्धान्तों के बीच कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। मान लीजिए, एक कार्ड बोर्ड (Card Board) का मकान है ; आंधी आवेगी और वह गिर जावेगा ; यदि कार्ड बोर्ड के मकानों की एक नगरी है तो उसमें आंधी आने पर कुछ तो गिर जावेंगे, और कुछ, जो पहिले झोंकों में गिर चुके हैं, उठ भी जावेंगे। मान लीजिए, लोहे के एक गोले का तापक्रम १०००° F. कर दिया गया है। उसमें स्थित प्रत्येक परमाणु चारों दिशाओं में विकीर्ण हो रहा होगा। इससे कुछ

परमाणुओं में तो ऊर्जा बढ़ेगी और कुछ में घटेगी—कुछ मकान गिरेंगे और कुछ उठेंगे। यदि केवल इतना ही होता तो यह कहना आसान था कि एक विशेष तापमान पर कितने परमाणुओं में ऊर्जा की वृद्धि होगी और कितनों में कमी। परन्तु ऐसा प्रयोगों से सिद्ध नहीं हो सका। इसके स्पष्टीकरण में आइन्स्टीन ने कहा कि हमें यह मान लेना चाहिए कि मकान आंधी से ही नहीं स्वयं भी गिर सकते हैं; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नाभियाँ बिना कारण ही टूटती हैं। उनका यह प्राकृतिक स्वभाव है, जिसका कोई कारण नहीं है।

आइन्स्टीन का यह स्पष्टीकरण केवल रेडियोधर्म सिद्धान्त की ही पुष्टि नहीं करता, अपितु यह सभी प्रकार के विकिरणों के लिए उपयुक्त है। प्रकृति का प्रत्येक कण (परमाणु) स्वयं में ही पूर्ण हो सकता है; वह स्वयं ही ब्रह्म हो सकता है। केवल इतना ही नहीं, वह स्वयं पूर्ण है ही—हो सकने की बात नहीं; यह तो एक तथ्य है। इस प्रकार कार्य और कारण केवल रेडियोधर्मी पदार्थों में ही नहीं लीन हुआ, उसका तो प्रकृति में कहीं नाम भी नहीं है। प्रकृति किसी ऐसे नियम को (कम से कम परमाणु की दुनिया में) नहीं जानती। उसमें तो कार्य स्वयं कारण हैं।

आज तक विज्ञान 'कार्य और कारण' के भेद को बराबर मानता आया है—इस तथ्य से कोई इन्कार भी तो नहीं कर सकता। यदि इस तथ्य को अब मान्यता न दी जाये तो विज्ञान की नींव हिल जाती है। उसके अस्तित्त्व का कोई चिह्न न मिलेगा और उसकी सफलताओं को कोई तर्क न मिलेगा। परन्तु उसकी सफलता तो निर्विवाद है, अतः उसके अस्तित्त्व के लिए तर्क भी होगा ही। हम पहिले ही कह आये हैं कि 'कार्य और कारण' का भेद परमाणु-दुनिया में ही विलीन हो जाता है; इस दुनिया के कुछ ऐसे रंग हैं जिनसे इस सिद्धान्त को पुष्टि नहीं मिलती। दूसरी बात यह भी है कि इस दुनिया में भी इन घटनाओं के विवरण के लिये संख्या-शास्त्र के नियम तो लागू होते ही हैं। जहाँ लाखों, अरबों परमाणु क्रियाशील हों, हम उनका विवरण संख्या के नियमों से कर सकते हैं। वास्तव में हमारा ध्यान भी किसी परमाणु विशेष के भूत या भविष्य की ओर खिंचे, इसका कोई कारण नहीं दिखता। बीमा (Insurance) करनेवालों को इस बात से दिलचस्पी नहीं है कि अमुक आदमी पर कब दुर्घटना होगी, अथवा उसकी मृत्यु एक वर्ष के अन्दर होगी या नहीं। उनको तो दिलचस्पी इस बात से है कि अधिक से अधिक अगले वर्ष कितने आदमी मर सकते हैं। ठीक इसी प्रकार वैज्ञानिक को परमाणुओं के अध्ययन में किसी एक विशेष के या व्यक्तिगत परमाणु के आचरण

जानने से मतलब नहीं है। अपितु उसका सारा ध्यान तो समूह के आचरण का अध्ययन करने में लगा होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे व्यावहारिक जीवन के लिये प्रकृति में कार्य और कारण का भेद और उनका परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है।

५. १७. नया विज्ञान. विज्ञान के इस चरण में गति की अविरतता नहीं थी—रेलगाड़ी का स्थान ऊंटगाड़ी ने ले लिया था (रेलगाड़ी में हिचकोले नहीं लगते, परन्तु किसी को ऊँट या ऊँटगाड़ी पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो तो वह बता सकता है कि ऊँट के हर कदम के साथ उसमें बैठे यात्रियों को कैसा अनुभव होता है)। इस चरण में सबसे अधिक आघात 'कार्य और कारण' के सिद्धान्त को पहुँचा। नाभियों के टूटने ने तो इस सिद्धान्त का समाधान ही नहीं किया। कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि हर परमाणु की अपनी किस्मत होती है, जिसके कारण वह टूटता है; यह किस्मत—भाग्य—स्वयं अपने में पूर्ण और मन माना होता है ; वह अपनी मर्जी का बादशाह होता है, जिधर मुंह उठा उधर ही चल दिये। विश्व के संचालक की मर्जी है कि वह अपनी सृष्टि को इस मार्ग से ले जाये या उस मार्ग से। इसमें तर्क करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई—अथवा यों कहो कि इसमें तर्क हो ही नहीं सकता।

यह सच है कि बहुत-सी जटिल और उलझी हुई समस्याओं को प्लांक का कण सुलझा सका, उद्जन के वर्णपट का कारण और उसका पूरा तर्कपूर्ण विवरण दे सका। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह और अधिक जटिल वर्णपटों का विवरण दे सका? नहीं। यही नहीं, यह सफलता तो हमें तब मिली, जब हमने कारणवाद और अविरतता का परित्याग कर दिया। यह ठीक है कि जो चीज ग़लत है उसको छोड़ दें, परन्तु कुछ सत्य का भान हो तब न। हम आगे बतावेंगे कि भौतिक सत्य क्या है। क्वांटा-सिद्धान्त भी वास्तव में तो ऐसा ही कोरा अनुमान है जैसा न्यूटन का गति-विज्ञान—फिर एक को छोड़ कर दूसरे अनुमान का क्या सहारा लिया जावे। यदि एक आम के पेड़ को एक आदमी अशोक का और एक जामुन का बताये तो आप किसे अधिक सत्य मानेंगे? यही बात क्वांटा-सिद्धान्त की भी रही—कदाचित् यह उस आदमी की तरह है जो आम को अशोक वृक्ष बतला रहा है। गले में फांसी लगा कर मरो या पोटैशियम साइनाइड खाकर मरो, मृत्यु दोनों में होती है। शायद प्लांक ने पोटैशियम साइनाइड को पसन्द किया था, जिससे मरने में कष्ट कम हो।

५.१८. नया रूप. बोर के परमाणु की रचना सूक्ष्म कणों से हुई थी। ये कण देश और काल में विचरण करते हैं, परमाणु के बाहर तथा भीतर एक-से होते हैं।

विद्युताणु तो इस प्रकार देखे नहीं जा सकते, जिस प्रकार हम एक दूसरे को देखते हैं, और न इस प्रकार जिस प्रकार हम अणुओं को देख सकते हैं। विद्युताणुओं के गुणों का अध्ययन केवल उन्हीं विद्युताणुओं के आधार पर किया गया है जो परमाणु के बाहर हैं; परमाणु के अन्दर का विद्युताणु तो अदृश्य है। तब हम यह कैसे कह सकते हैं कि विद्युताणु का जो स्वरूप परमाणु के बाहर है वही अन्दर भी होगा। घोड़े की टाप से निकलनेवाली चिनगारी से क्या आप यह कहेंगे कि उसके पैर में आग है? किसी भी वैज्ञानिक अनुसन्धान के तीन क़दम होते हैं। एक तो यह है कि प्रकृति के किसी भी तथ्य का नियंत्रण करनेवाले गणित से नियमों की खोज की जाती है; दूसरा क़दम यह होते है कि इन गणित के नियमों के अनुसार प्रकृति के इन तथ्यों के लिये उनके गतिमार्ग या यांत्रिक प्रणाली के काल्पनिक चित्र बनाये जाते हैं; तीसरा क़दम होता है उन नियमों तथा उन चित्रों की सहायता से दूसरे तथ्यों का स्पष्टीकरण करना। न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का निरूपण बल द्वारा किया था, दूसरों ने प्रकाश के विचरण (Propagation) के लिये ईथर की कल्पना की थी और बोर ने कंगारू वाली कूद की। इन तीनों में इन्होंने अपने-अपने तथ्यों का समाधान कर दिया। परन्तु जब प्रकृति के दूसरे तथ्यों का पूर्ण विवरण इनसे लेना चाहा तो ये असफल हो गये।

Heisenberg ने इस समस्या को दूसरे ही दृष्टिकोण से देखा। उसने रासायनिक तत्त्वों के वर्णपटों का विश्लेषण किया। इन प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि आवृतियां सदैव पूर्ण संख्या होती हैं; और यह भी कि वे स्वयं भी कुछ और मूल आवृत्तियों की अन्तर मात्र हैं। इन मूल आवृत्तियों की कुछ श्रेणियां थीं—और प्रत्येक श्रेणी में आनेवाली आवृत्तियों की संख्याओं का १, २, ३, ४, ५,..........पूर्ण संख्यांओं से एक निश्चित सम्बन्ध था। बोर ने यह खोज निकाला था कि बड़ी-बड़ी संख्याओं से सम्बन्धित आवृत्तियों का ज्ञान पुराने यंत्र-विज्ञान से सम्भव है। वास्तव में ये आवृत्तियां उस विद्युताणु की होती हैं जो नाभि से दूरस्थ मार्ग पर हैं, और एक सेकेंड में अपनी इस नाभि की परिक्रमा अपने दूरस्थ मार्ग पर जितनी बार करता है उतनी ही इसकी आवृत्ति होती है। परन्तु यदि यंत्र-विज्ञान से उन विद्युताणुओं की आवृत्तियां भी निकाली जावें जो नाभियों के पास हैं तो हमें असफलता मिलेगी।

ठीक ऐसी ही घटना नक्षत्रों के विवरण में भी घटी। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम से सूर्य से दूरवाले सब ग्रहों के मार्ग का निश्चित ज्ञान हो गया; परन्तु बृहस्पति और शुक्र ग्रह के मार्ग का बिवरण उन नियमों के ज्ञान से नहीं हो सका। गुरुत्वाकर्षण

को जब सापेक्षवाद का जामा पहनाया गया तब यह मालूम हुआ कि न्यूटन के सिद्धान्त दूरस्थ पिंडों पर ही अधिक सफलता से लागू होते हैं। हेज़नबर्ग ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और नाभि से दूरस्थ विद्युताणुओं में उसने उसी पुराने यंत्र-विज्ञान का प्रयोग किया। इस प्रकार हेज़नबर्ग ने नाभि के बाहरवाले विद्युताणुओं के लिये न्यूटन और बोर दोनों के सिद्धान्तों का उपयोग किया। परमाणु के भीतर बोर ने तो यह किया था कि विद्युताणु को मुख्य मान कर न्यूटन के सिद्धान्त में संशोधन करने का प्रयास किया; किन्तु हेज़नबर्ग ने इसका बिलकुल ही उलटा रूप लिया। उसने न्यूटन के सिद्धान्तों को बहुत कुछ रूप में अपनाया और विद्युताणु में संशोधन किया।

६

आदि और अन्त

६.१. **विश्व का आदि.** आज जब मैं इस अध्याय को लिख रहा हूं तो सोचता हूं कि अभी-अभी कोई दो मिनट पहिले इन शब्दों का अस्तित्त्व न था। दो मिनट में इनका जन्म हुआ है। क्या हमारी पृथ्वी अथवा सृष्टि का भी आदि था? क्या कभी ऐसा समय था जब यह सृष्टि न रही हो और एकाएक कहीं से एकदम आ गई हो। यदि कोई आदि था तो उससे पहिले क्या था? बाद का यह प्रश्न यदि न होता तो पहिले का उत्तर बहुत सरल था। यदि हम कहें कि एक आदि था तो तुरन्त प्रश्न होता है कि उससे पहिले क्या था? और इस प्रश्न का उत्तर हमारे पास नहीं है? यह तर्क ऐसा है कि इससे छुटकारा पाना सहज नहीं है। फिर भी यह एक दर्शन का विषय है और हम इस पर अधिक कुछ कहना नहीं चाहते। उससे दूर हम यह जानना चाहते हैं कि इन्द्रियानुभूत पिंडों का क्या इतिहास है?

एक समय था, जब यह भूतल आग का एक गोला था। और धीरे-धीरे यह एक उबलते हुए द्रव्य की शक्ल में आया। आज भी धरती का भीतरी भाग इस सत्य का साक्षी है। इस ठोस जमीन का अस्तित्त्व तो बहुत सूक्ष्म है। यदि पृथ्वी के इस पार से उस पार तक एक छेद बना दिया जावे और उसके आन्तरिक भाग का तापमान लिया जावे तो वह हर किलोमीटर पर ३०°C बढ़ जावेगा। दुनिया की सबसे गहरी खान अफ़रीका में है। इतनी गरम है कि उसमें तापमान को यांत्रिक विधियों से नीचा करना

पड़ता है, नहीं तो उसमें काम करनेवाले कर्मचारी ज़िन्दा ही भुन जावें। ५० किलोमीटर पर ही इतना तापमान हो जावेगा कि कड़ी-सी-कड़ी चट्टानें भी पिघल जावेंगी। तब ५० किलोमीटर से दूर तो पृथ्वी का प्रत्येक भाग पिघली हुई अवस्था में होगा। यह सब ठोसपन की क्रिया धीरे-धीरे हो रही है। आज पृथ्वी का कुछ ही भाग ठोस है, भविष्य में सारी पृथ्वी ठोस हो जावेगी। आज जितना भी भाग ठोस हो पाया है उसे पिघली हुई हालत से इस अवस्था को प्राप्त करने में खरबों वर्ष लगे होंगे।

प्रत्येक चट्टान का इतिहास नापने के लिये उसी में एक घड़ी होती है। इन चट्टानों में जो भाग यूरेनियम या थोरियम का होता है वही समय का ज्ञान कराता है। इन तत्त्वों की नाभियाँ स्वयं ही टूटती रहती हैं, जिससे सीसा (Lead) बनता रहता है। इसी सीसे की मात्रा से चट्टानों की उम्र का पता लगाया जाता है। इस विधि से पता लगाने पर मालूम हुआ कि दुनिया में कोई चट्टान ऐसी नहीं है जिसकी आयु २ खरब वर्ष से अधिक हो और इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस ठोस धरातल का जन्म २ खरब से अधिक वर्षों में नहीं हुआ। फिर भी प्रश्न यह है कि आखिर यह पिघला हुआ पदार्थ ही कहाँ से आया? केवल हमारी ही दुनिया का नहीं, दूसरे ग्रह आदि का निर्माण कैसे हुआ? फ़्रांस के एक वैज्ञानिक 'बफन' ने सबसे पहिले इस ओर क़दम उठाया। उसने कहा कि इन ग्रहों की रचना सूर्य और पुच्छल तारे की टक्कर के कारण हुई है। इस टक्कर में सूर्य के बहुत से खंड हो कर इधर-उधर बिखर गये। जर्मन दार्शनिक कान्ट ने एक दूसरे मत का प्रतिपादन किया है। उसने कहा कि बिना टक्कर के ही सूर्य ने इस परिवार को जन्म दिया है। कान्ट की धारणा थी कि सूर्य आरम्भ में गैस का एक गोला था, जो अपेक्षाकृत कुछ ठंडा था और अपनी धुरी पर घूमता था। जैसे-जैसे विकिरण होता गया, यह ठंडा पड़ा, इसके आयतन में कमी आई, जिससे इसका वेग बढ़ गया। वेग बढ़ जाने से इसमें से गैस के छोटे-छोटे गोले निकल भागे, जिन्होंने इन ग्रहों का निर्माण किया। इन्हीं धारणाओं को लाप्लास ने भी मान्यता दी।

बृटिश वैज्ञानिक क्लार्क मैक्सवेल ने यह सिद्ध किया कि कान्ट और लाप्लास की मान्यताएं अशुद्ध हैं और उनमें परस्पर प्रतिकूलता है। यह प्रतिकूलता इतनी गंभीर थी कि कान्ट और लाप्लास की धारणा लगभग समाप्त हो गई और बफ़न के संघर्षण के सिद्धान्त को पुनःजीवन प्राप्त हुआ। बफ़न के सिद्धान्तों में कुछ परिवर्तन अवश्य

करना पड़ा। बफ़न की यह धारणा कि ग्रहों का जन्म सूर्य और पुच्छल तारे के संघर्ष के कारण हुआ था, सत्य सिद्ध न हो सका; क्योंकि पुच्छल तारे की मात्रा बहुत कम होती है। यह समझा गया कि संघर्ष पुच्छल तारे से नहीं, अपितु किसी और तारे से हुआ होगा। परन्तु यहां एक समस्या और उत्पन्न हो गई कि आखिर इस प्रकार से उत्पन्न ग्रहों का मार्ग वृत्ताकार ही क्यों है? इसका कारण यह बताया गया कि जब यह संघर्ष हुआ था तब सूर्य के चारों ओर गैस का गोला था और जब इन ग्रहों का जन्म हुआ तब इसी गैस के कारण उनका मार्ग वृत्ताकार हो गया। परन्तु अब हम समझते हैं कि इस समय तो सूर्य के चारों ओर किसी प्रकार का गैस नहीं है। इस उलझन को इस प्रकार सुलझाया गया कि अब यह गैस का लिफ़ाफ़ा समाप्त हो गया है, जिसका कुछ आभास अब भी मिलता है। बफ़न का यह सिद्धान्त भी अधिक सन्तोषजनक नहीं प्रतीत हुआ।

सन् १९४३ में जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने अपना एक मत चलाया। उसने बताया कि कान्ट तथा लाप्लास के विरुद्ध तर्कों का समाधान किया जा सकता है। इन्हीं २० वर्षों के विकसित विज्ञान ने पृथ्वी की रासायनिक रचना के विषय में हमारी धारणा को बहुत कुछ बदल दिया है। यह समझा जाता था कि सूर्य और पृथ्वी की रासायनिक रचना एक सी है। (बफ़न के सिद्धान्त से तो ऐसा ही होना चाहिए; क्योंकि सूर्य ही से तो पृथ्वी का जन्म हुआ है) परन्तु विज्ञान ने हमें बतलाया कि रचना एक-सी नहीं है। वैज्ञानिक विश्लेषण तो यही कहता है कि हमारी पृथ्वी में अधिकतर आक्सीजन, सिलिकॉन, लोहे और दूसरे भारी तत्त्वों की मात्रा अधिक है। हल्के तत्त्व तो बहुत कम हैं। सूर्य में लगभग ५० प्रतिशत मात्रा में उदजन पाया जाता है। इसके अतिरिक्त हीलियम की मात्रा भी सूर्य में बहुत अधिक है। इस प्रकार के अन्वेषणों ने यह स्पष्ट कर दिया कि पृथ्वी में जिन तत्त्वों की अधिकता है वे सूर्य की रचना मे केवल १% ही पाये जाते हैं। इन अन्वेषणों ने यह भी सिद्ध किया कि नक्षत्रों तथा ग्रहों के बीच का देश रिक्त नहीं है अपितु उसमें पदार्थ है। इस पदार्थ का एक मिली-ग्राम देश के १,०००,००० घन मीलों में विस्तृत है और इस पदार्थ की रचना भी ठीक सूर्य जैसी ही है। इस पदार्थ की रचना का ज्ञान हमें करोड़ों प्रकाश-वर्ष दूरी पर स्थित नक्षत्रों से आनेवाली प्रकाश-रश्मियों से होता है।

कान्ट और लाप्लास ने यह माना था कि सूर्य के चारों ओर गैस है, जिसमें से स्वयं ही ग्रह बन गये। तब इससे यह प्रकट होता है कि इन ग्रहों के बनने में इस

गैस का थोड़ा ही अंश लगा होगा—केवल वही भाग, जिसमें भारी तत्त्व थे। शेष भाग, जिसमें अधिकतर उदजन और हीलियम रहे होंगे, या तो सूर्य में ही खो गया होगा अथवा देश में विलीन हो गया होगा। यदि हम पहिली बात को मानते हैं तो सूर्य की गति अपनी धुरी पर और तेज हो जावेगी। अतः हमें दूसरी बात को मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है। अतएव जब स्वयं हमारे इस सूर्य का जन्म उस पदार्थ से हुआ जो देश में व्याप्त है, तब इसका अधिकांश भाग गैस की शक्ल में रहा होगा। यह गैस इस घनीभूत पदार्थ के चारों ओर थी। इसकी कल्पना इस प्रकार कीजिए:—एक गोले के चारों ओर पानी भरा है, इस पानी में छोटी-बड़ी मछलियां तैर रही हैं। यह गोला ठोस सूर्य का रूप है, पानी उस गैस का जो उसे चारों ओर से ढके है और मछलियाँ पदार्थ के छोटे-छोटे कण हैं। जब छोटी मछलियाँ बड़ी मछलियों के पास जायेंगी तो बड़ी उसे खा जावेंगी; छोटी को खाकर बड़ी और बड़ी हो जावेंगी। यदि छोटी-छोटी के पास गई तो या तो दोनों मर जावेंगी अथवा एक दूसरे को खा ही न सकेगी। इस संघर्ष के बाद कुछ ही मछलियाँ बचेंगी जो स्वयं एक दूसरे को नहीं खा सकतीं, और छोटी मछलियों को खाकर खूब मोटी हो गई हैं। यही उस गैस के कणों में होगा। छोटे कण बड़ों में मिलते चले जावेंगे और कालान्तर में कुछ बड़ी मछलियां—कुछ महापिंड ही बचेंगे। ये ही महापिंड हमारे ग्रह होंगे। गणित की सहायता से यह अनुमान लगा लिया गया है कि कणों से महान् पिंडों की रचना के लिये लगभग १० अरब वर्ष लगे होंगे। ग्रहों के निर्माण के इस सिद्धान्त से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकट होता है। जब तक गैस रहेगी और उसमें कण रहेंगे तब तक छोटा कण बड़े कण में जाकर मिलेगा, अर्थात् जब तक छोटे और बड़े कणों का घर्षण है तब तक वह पिघली हुई दशा में रहेगा। परन्तु जब यह क्रिया समाप्त हो जावेगी तब विकिरण की क्रिया से बाहरी सतह ठंडी पड़ जावेगी और धीरे-धीरे ठोसपन बढ़ेगा।

इस सिद्धान्त की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है। यह सिद्धान्त कहता है कि सौर परिवार के उपग्रहों के मार्गों में एक निश्चित सा सम्बन्ध है। इस प्रकार उनका सम्बन्ध है कि दो पासवाले वृत्ताकार मार्गों के व्यासों का अनुपात दो है। निम्न सारिणी देखिए:—

ग्रह का नाम	सूर्य से दूरी *	अनुपात
१. बुद्ध	०·३८७	
२. शुक्र ग्रह	०·७२३	१·८६
३. पृथ्वी	१·०००	१·३८
४. मंगल	१·५२४	१·५२
५. उपग्रह	२·७	१·७७
६. बृहस्पति	५·२०३	१·९२
७. शनि	९·५३९	१·८३
८. यूरेनस	१९·१९१	२·०१
९. नैफ्च्यून	३०·०७	१·५६
१०. प्लूटो	३९·५२	१·३१

इस सारिणी में १० ग्रहों के सूर्य से अन्तर दिये गये हैं। यह अन्तर पृथ्वी से सूर्य की दूरी की इकाइयों में हैं। अर्थात् पृथ्वी और सूर्य की दूरी को इकाई मानकर इनको मापा गया है। दूसरे खानों की राशियां संकेत करती हैं कि इनका मान लगभग २ है।

शनिग्रह के ९ उपग्रह हैं। इस प्रकार की सारिणी से यद्यपि सम्बन्ध एकदम दोगुना तो नहीं, फिर भी एक निश्चित सा जान पड़ता है।

इन सब झगड़े में पड़कर हम यह भूल गये कि उस गैसवाले भाग का क्या हुआ जो सूर्य को चारों ओर से घेरे था। इसका बड़ा सरल उत्तर है। जब कणों में संघर्ष हो रहा था और इन कणों से बड़े-बड़े पिंड बन रहे थे तब गैस का वह अंश जिसने इस क्रिया में भाग नहीं लिया था, देश में व्याप्त हो गया था। सम्पूर्ण देश में व्याप्त होने के लिये उसे लगभग १००,०००,००० वर्ष लगे होंगे। यह समय लगभग उतना ही है, जितना कि ग्रहों के निर्माण में लगा था। इस सिद्धान्त का एक मुख्य पहलू यह है कि ग्रहों के बनने की घटना असाधारण नहीं अपितु बिलकुल साधारण थी। संघर्ष के सिद्धान्त में इसे एक असाधारण रूप दिया गया था। वास्तव में गणना ने यह सिद्ध कर दिया कि नक्षत्रों का ऐसा संघर्ष आकाशगंगा में, जिसमें लगभग ४०,०००,०००,००० नक्षत्र हैं, खरबों वर्षों में केवल कुछ ही बार हो सकता था।

* पृथ्वी और सूर्य की दूरी को इकाई माना गया है।

प्रत्येक नक्षत्र के ग्रह होते हैं। हमारी आकाशगंगा में ही लाखों ऐसे ग्रह हैं जिनका भौतिक वातावरण इस पृथ्वी ग्रह से मिलता है। अब प्रश्न यह है कि क्या उन पर भी जीवन है? जीवन-कणों में मुख्य रूप से कार्बन, उदजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन का अंश होता है। प्रत्येक ग्रह में इन्हीं तत्त्वों की अधिकता होती है, अतः हम यह आशा करते हैं कि इन परमाणुओं में कभी न कभी जीवन प्रस्फुटित हो उठेगा। यह ठीक है कि स्वयं ही इन तत्त्वों का इस प्रकार से मेल हो कि जीवन प्रस्फुटित हो जावे, इसकी सम्भावना बहुत कम है। परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि एक तो इन परमाणुओं की अधिकता है और दूसरे समय का अभाव नहीं है। पृथ्वी पर जब जीवन का उदय हो सकता है तो क्या कारण है कि दूसरे ग्रहों पर जीवन न आवे—चाहे उसे आने में खरबों वर्ष ही क्यों न लगें। चाहे एक बार सबसे सरल रूपमें जीवन प्रस्फुटित हो, फिर वह अपनी प्रजनन क्रियाओं तथा विकास से सारे ग्रह को भर देगा। यह कहा नहीं जा सकता कि दूसरे ग्रहों पर जीवन किस प्रकार विकसित हो सकता है। यह तो तभी सम्भव हो सकेगा जब कुछ और ग्रहों के जीवन का अध्ययन कर लिया जावे। परन्तु चाहे हम मार्स और वीनस पर के जीवन का अध्ययन ही क्यों न कर लें, फिर भी दूसरे ग्रहों के विषय में हमारा ज्ञान अधूरा ही रहेगा।

६·२. विश्व का विस्तार. यह हुआ हमारे ग्रहों के विकास का कुछ आभास। सत्य क्या है, कुछ नहीं कहा जा सकता; परन्तु यह अनुमान भी सत्य के बहुत निकट जान पड़ता है। प्रश्न यह है कि क्या हमारा विश्व भी इसी प्रकार विकसित हुआ, क्या यह ऐसा ही था जैसा है और ऐसा ही रहेगा? या हमारा विश्व लगातार बदल रहा है?

हम अपने ज्ञान के आधार पर तो एक निश्चित मत से कह सकते हैं कि हां, विश्व बढ़ रहा है, उसका विकास हो रहा है। इसका भूत था, वर्तमान है और भविष्य होगा। हमारा ज्ञान हमें कुछ और आगे ले जाता है और इस पुराने प्रश्न का उत्तर देता है कि क्या इसका कभी 'आदि' था। उत्तर हैं, हां, इसका आदि भी था। हमारे ग्रह-मंडल की आयु तो कुछ खरब वर्षों की है; चांद की आयु भी लगभग इतनी ही है। आकाश के कुछ नक्षत्रों की आयु कई खरब वर्ष की है। ये सब अनुमान तो कणों के घनीभूत होने के सिद्धान्त पर आधारित हैं; परन्तु इनके अलावा हम ग्रहों की रासायनिक रचना के आधार पर भी यह कह सकते हैं। थोरियम और यूरेनियम जैसे रेडियोधर्मी तत्त्व तो इस दिशा में बहुत ही सहायक सिद्ध हुए हैं। विश्व में इन तत्त्वों

का विनाश हो रहा है; तब भी ये समाप्त नहीं हो सके हैं। दो ही बातें हैं, या तो इनका निर्माण प्रकृति में अब भी हो रहा है अथवा भविष्य में ये तत्त्व समाप्त हो जावेंगे। परन्तु हम पहिले ही बता चुके हैं कि इन तत्त्वों के निर्माण के लिये असाधारण तापमान की आवश्यकता है। यह तापमान आज किसी भी नक्षत्र में नहीं है, अतः यह प्रश्न ही नहीं उठता कि इनका निर्माण हो रहा है। अब यह प्रश्न उठता है कि इन तत्त्वों के आधार पर क्या उनकी आयु का एक सही अनुमान लगाया जा सकता है?

थोरियम जौर यूरेनियम^{२३८} की औसत आयु ४$\frac{१}{२}$ खरब वर्ष है; इन तत्त्वों का अभी विनाश नहीं हुआ है। यूरेनियम^{२३५} की आयु $\frac{१}{२}$ खरब वर्ष है, जब कि यह यूरेनियम^{२३८} का $\frac{१}{१४०}$वां भाग ही है। थोरियम और यूरेनियम^{२३८} की अधिकता आज इस ओर संकेत करती है कि इनके निर्माण को कुछ खरब वर्षों से अधिक नहीं हुए होंगे। और यूरेनियम^{२३५} तो हमें और भी निकट ले जाता है। यदि यूरेनियम^{२३५} हर ५० करोड़ वर्ष बाद भी आधा हुआ करे तो लगभग सात बार में वह अपना $\frac{१}{१४०}$वां भाग रहेगा। यह अनुमान और वे अनुमान जो ग्रहों के निर्माण के सम्बन्ध में दूसरे सिद्धान्तों से लगाये गये थे बिल्कुल एकमत है।

परन्तु उस आदि समय में इस विश्व की क्या अवस्था थी; और किस प्रकार के परिवर्तन हुए इस पर जो आज की हालत के कारण कहे जा सकते हैं?

आकाशगंगा की तरह अगणित नक्षत्रपुंज हैं इस विश्व में, एक-एक पुंज में खरबों सूरज जैसे नक्षत्र हैं; और जहां तक आंखें काम कर सकती हैं, हम यह कह सकते हैं कि इस आकाश में इन नक्षत्रों का वितरण समान है, एक-सा है। माउंट विलसन वेधशाला की दूरबीन से देखने पर मालूम हुआ कि जब इन नक्षत्र-पुंजों का वर्णपट लिया जाता है तो वर्ण-रेखाओं का झुकाव वर्णपट के लाल सिरे की ओर होता है; यह झुकाव उतना ही अधिक होता है जितनी दूर वह नक्षत्र-पुंज होता है। बाद में यह सिद्ध हो गया कि नक्षत्रपुंजों की हमसे दूरी के अनुपात में ही यह 'लाल-झुकाव' होता है।

भौतिक विज्ञान में डाप्लर-प्रभाव के नाम से एक विकिरण की विशेष क्रिया होती है। यदि आप एक ऐसे गतिशील पिंड का वर्णपट लें जो आपकी ओर आ रहा हो तो इस वर्णपट में रेखाओं का झुकाव नीले रंग की ओर होगा, और यदि किसी ऐसे पिंड का वर्णपट लें जो आपसे दूर भाग रहा हो तो उन रेखाओं का झुकाव लाल रंग की ओर

होगा। अब यदि हम यह मान लें कि नक्षत्रपुंज एक दूसरे से दूर भाग रहे हैं तो सब ठीक हो जावे। ऐसा मालूम होता है कि हमारी आकाशगंगा में कोई दोष आ गया है, जिससे उसका पड़ोस भी दूसरे नक्षत्रपुंज पसन्द नहीं करते। पर ऐसी बात नहीं है। एक गुब्बारा लीजिए, उस पर खूब सी बिन्दियां अंकित कर दीजिये। एक बिन्दी पर एक कीड़े को बैठा दीजिये और फिर उस गुब्बारे में हवा भरना आरंभ कीजिये। जैसे जैसे गुब्बारा फूलेगा वैसे ही वैसे बिन्दुओं की परस्पर दूरी बढ़ती जावेगी और कीड़े को महसूस होगा कि सब बिन्दु उससे दूर भाग रहे हैं। ठीक ऐसी ही बात इन नक्षत्र-पुंजों में होती है—सब नक्षत्रपुंज एक दूसरे से दूर भाग रहे हैं। इन नक्षत्रपुंजों के दूर भागने से विश्व में विस्तार होता है।

इस विस्तार का वेग मालूम है और यह भी मालूम है कि इस समय हमसे कौन नक्षत्र पुंज कितनी दूर है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि २ या ३ खरब वर्ष हुए जब यह विस्तार आरम्भ हुआ होगा। उससे पहिले तो नक्षत्रपुंजों का नाम न था। नक्षत्र सारे देश में एक से रूप में वितरित थे। उससे भी पहिले नक्षत्र केवल एक गैस के गोले थे और तभी इन रासायनिक तत्त्वों का निर्माण हुआ। अब हम कह सकते हैं कि एक समय ऐसा रहा होगा जब विश्व में विस्तार नहीं था और सारे विश्व का पदार्थ सूर्य के चारगुने व्यास के क्षेत्र में ही वितरित था। इसका असाधारण घनत्व था। यह अवस्था अधिक दिनों तक नहीं चली ; क्योंकि विश्व के विस्तार की क्रिया ने दो ही सेकिंड में इस घनत्व को घटाकर जलके घनत्व का दस लाख गुना करा दिया होगा और उसके बाद कुछ ही घंटों में यह घनत्व पानी के समान रह गया होगा। इसी समय पदार्थ का यह एक-सा वितरण स्थान-स्थान पर घनीभूत हो गया होगा और तत्पश्चात् नक्षत्रों का निर्माण हुआ होगा। परन्तु यह विश्व कहाँ तक बढ़ेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

अब एक और समस्या है। क्या यह सम्भव है कि यह विस्तार कभी रुक जावेगा और विस्तार के स्थान पर विश्व सिकुड़ना आरम्भ कर देगा। क्या कभी ऐसा तो नहीं होगा कि विश्व का सारा पदार्थ इस सूर्य तथा पृथ्वी पर आ जावे और इस मानवता का नाम-निशान न रहे! गणित यह कहता है कि ऐसा कभी नहीं होगा। बहुत दिन हुए, जब विश्व ने आकर्षण के नियमों का त्याग कर दिया था। आज तो वह असीम देश में बेहिसाब बढ़ रहा है। एक नक्षत्रपुंज का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र दूसरे नक्षत्रपुंज पर अपना प्रभाव डालता है। परन्तु आज का विज्ञान हमें बताता है कि इन नक्षत्र-पुंजों

की चल-ऊर्जा अपने इस गुरुत्वाकर्षण बल से कहीं अधिक है जिससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारा विश्व बढ़ रहा है और वह कभी भी गुरुत्वाकर्षण के बलों के कारण बढ़ने से न रुक सकेगा। यह माना कि नक्षत्रों के आचरण के विषय में हमारे ये सब अनुमान ही हैं और हो सकता है कि भविष्य यह सिद्ध कर दे कि विश्व बढ़ नहीं घट रहा है। तब भी वह समय खरबों वर्ष दूर है जब सारा विश्व एक ही जगह केन्द्रीभूत हो जावेगा।

आखिर हमारा विश्व बढ़ ही क्यों रहा है? इसका उत्तर अधिक सन्तोषजनक नहीं है और अन्ततोगत्त्वा हमें यही कहना पड़ता है कि प्रकृति में हर स्थान पर 'कार्य और कारण' का सम्बन्ध नहीं पाया जाता। बहुत सम्भव है कि पहिले विश्व केन्द्रीभूत हो गया हो और वापस अपने विस्तार की ओर लौट रहा हो। पिंग पौंग की तरह यह भी केन्द्रीभूत होकर फिर उछाल मार रहा हो।

६·३. **ताप क्या है?** दो वस्तुओं को छूकर हम यह कह देते हैं कि एक गर्म है, एक ठंडा। तो क्या हम यह कह दें कि एक में ताप की मात्रा अधिक है, एक में कम? दो बर्तनों में शरबत बनाया गया; दोनों में दो-दो छटांक चीनी डाली गई और एक में सेर भर पानी तथा दूसरे में दो सेर पानी डाला गया। एक मीठा था, एक फीका। अतः एक में शक्कर अधिक थी, एक में कम! अरे यह तो असत्य है; आप कह उठेंगे। तब फिर एक गर्म है, एक ठंडा; एक में ताप अधिक है दूसरे में कम— यह भी असत्य हो सकता है। वास्तव में ठंडा और गर्म तापमान के अन्तर के कारण हैं, न कि ताप की मात्रा के अन्तर के कारण; वैसे ताप की मात्रा के अन्तर में भी तापमान का अन्तर हो सकता है। यह ताप है क्या? आप अपने हाथों को रगड़िये, गर्म हो जावेंगे हाथ। मोटर का मशीन चलते-चलते कितना गर्म हो जाता है! वास्तव में गति का ही एक रूप है यह, और ऊर्जा का भी। इस ताप के ही कारण गति हो सकती है। वर्फ़ का तापमान $0°C$ होता है; आप कहेंगे कि तापमान नहीं तो ताप नहीं, फिर गति भी नहीं होगी उसमें। परन्तु यदि आप किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखें तो मालूम होगा कि $0°C$ वाले पानी में अणु एक हलचल मचाये हुए हैं; जैसे किसी पार्क में बच्चे खेल-कूद रहे हों। अणुओं की इस उछल-कूद को '**ताप-गति**' की संज्ञा दी जाती है। यदि आप किसी बैक्टीरिया को पानी में लटका कर देखें तो मालूम होगा कि पानी के अणु इस बैक्टीरिया पर लात घूंसे बरसा रहे हैं। ब्राउन ने इस रहस्य को सबसे पहिले समझा था और इसको ब्राउन वाली-गति का नाम दिया गया।

अब यदि हम द्रव को गरम करना आरम्भ कर दें तो उनकी यह गति और भी अधिक तीव्र हो जाती है; यदि ठंडा करें तो यह गति मन्द पड़ जाती है। अब हमें कुछ ऐसा ज्ञात होता है कि तापमान इसी गति की तीव्रता का मापक है। जब तापमान के साथ गति को कम किया गया तो यह देखा गया कि —२७३°C या —४५९°F पर अणुओं की हलचल एकदम समाप्त हो जाती है। प्रकट है कि हम गति को शून्य से ऋणात्मक नहीं बना सकते; ऋणात्मक गति का कोई अर्थ नहीं है; अतः यह भी प्रकट है कि इस तापमान से कम भी कोई तापमान नहीं हो सकता। इस तापमान को 'निरपेक्ष शून्य' कहते हैं।

दो प्रकार के बल अणुओं की इस हलचल के लिये उत्तरदायी हैं: एक उनका आकर्षण (Cohesive) बल, तथा दूसरा वह बल जो चल ऊर्जा के कारण होता है। पहिला बल उन्हें एक जगह केन्द्रीभूत रखने का प्रयास करता है और दूसरा उनमें गति उत्पन्न करता है। इस 'निरपेक्ष शून्य' तापमान के निकट दूसरा बल शून्यप्राय हो जाता है अतएव पहिले बल की अधिकता के कारण प्रत्येक प्रकार का पदार्थ ठोस हो जाता है, जैसे-जैसे तापमान बढ़ेगा वैसे ही वैसे अणुओं की हलचल और उनकी चल-ऊर्जा। बढ़ेगी। चल ऊर्जा के बढ़ने से उनमें विस्तार होगा—पहिले ठोस से द्रव बनेगा और द्रव से गैस। प्रत्येक तत्त्व की प्रवृत्ति भिन्न होती है। समान तापमान पर भिन्न-भिन्न तत्त्वों की अवस्था विभिन्न होगी। उद्जन में पहिला बल बहुत क्षीण है ; आप तापमान को जब तक घटाकर — २५९°C नहीं कर देते तब तक वह ठोस अवस्थाको प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार आक्सीजन आदि दूसरी गैसें हैं जिनका हिमांक (Freezing point) बहुत कम है। दूसरे तत्त्वों में Cohesive बल कुछ अधिक होता है और वे ऊंचे तापमानों पर भी ठोस ही बने रहते हैं। अल्कोहल (शराब) का Freezing point — १३०°C है और जल का 0°C लोहे को आप जब तक १५३५°C तक गर्म नहीं करेंगे तब तक न पिघला सकेंगे ; ओसमियम तो कहीं जाकर २७००°C पर पिघलता है। ठोस अवस्था में अणुओं में पारस्परिक मिलन की शक्ति अधिक तीव्र होती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अणुओं की चल ऊर्जा में अन्तर का कारण पदार्थ की अवस्था होती है। यदि हम यह कहें कि २५°C पर लोहा, पानी तथा आक्सीजन के अणुओं की चल ऊर्जा भिन्न है, क्योंकि उनकी अवस्थाएं भिन्न हैं तो यह असत्य ही होगा। चल ऊर्जा पदार्थ के तापमान पर निर्भर करती है, न कि उसकी अवस्था पर। एक तापमान पर लोहे, पानी तथा आक्सीजन के अणुओं की

चल-ऊर्जा एक ही होगी। हाँ, उनके Cohesive बल में अवश्य अन्तर होगा।

पदार्थ की तीनों अवस्थाओं में अणुओं की यह उछलकूद होती रहती है। एक्स-किरण से इसका चित्र लेना भी सम्भव है। जब आप अपना फोटो खिंचवाते हैं तो कुछ क्षणों के लिये आपको निश्चल हो कर बैठना पड़ता है—यदि आप इन क्षणों में हिल जायं तो चित्र खराब हो जावेगा। इसी प्रकार जब इस हलचल का चित्र लिया जावे तो यह आवश्यक है कि क्षण भर के लिये अणु स्थिर हो जावें, अन्यथा चित्र खराब हो जावेगा। यदि अस्थिर अवस्था में चित्र लिया जावे तो उस पर धब्बे पड़ जावेंगे। अच्छा चित्र लेने के लिये पदार्थ का तापमान घटा दिया जाता है ; कभी-कभी तापमान घटाने के लिये पदार्थ को द्रवित-वायु (Liquid air) रूप में रखा जाता है। यदि तापमान बढ़ा दिया जावे तो चित्र ख़राब होने लगता है, और द्रवणांक पर तो बिल्कुल ही बेकार हो जाता है क्योंकि इस अवस्था में अणु अपनी स्वाभाविक अवस्था में बिल्कुल ही नहीं रहते।

ठोस के पिघलने पर भी पदार्थ के अणु एकदम अलग-अलग नहीं हो जाते। और ऊँचे तापमान पर तो ये अणु स्वतंत्र हो जाते हैं और अपनी-अपनी जगह छोड़ कर आकाश की सैर करने के लिये आतुर हो उठते हैं। इस अवस्था में पदार्थ गैस बन जाता है। गैस का बनना वायु के दबाव पर निर्भर करता है। वायु का दबाव पदार्थ के Cohesive बल को सहारा देता है कि वह अपने पदार्थ के अणुओं को बाहर न जाने दे। पर्वतों पर, जहाँ वायु का दबाव कम होता, है पानी १००°C से पहिले ही उबलने लगता है। अतः यदि पानी का यह तापमान मालूम हो जावे जिस पर वह उबलना आरम्भ करता है तो हम वायु का दबाव और समुद्र से उस स्थान की उंचाई मालूम कर सकते हैं।

जितना अधिक Melting point होगा उतना ही Boiling point भी अधिक होगा। उदजन जब द्रव अवस्था में होती है तो उसका Boiling point—२५३°C होता है और आक्सीजनका—१८३°C, लोहेका ३०००°C और ओसमियमका ५३००°C.। इससे हमें यह मालूम होता है कि ताप की स्वाभाविक प्रवृत्ति ध्वंसकारी है—वह दो मित्रों की मित्रता में कांटा बनता है। जब दोस्ती में ताप आ जाता है तब दोस्ती भिन्न होने लगती है। दोनों दोस्त एक दूसरे से चिढ़कर अलग खड़े हो जाते हैं और यदि तापमान और बढ़ा तो दोस्त एक दूसरे से दूर भाग जाते हैं। ध्वंसकारी शक्तियों को इतने ही में सन्तोष नहीं होता कि वे दो दोस्तों की दोस्ती को छुड़ाकर सब्र कर लें। यदि फिर भी तापमान

बढ़े तो अब इनके अस्तित्त्व पर प्रहार होता है ; अंग-अंग विभक्त हो जाते हैं। अणु अपने परमाणुओं में विभक्त हो जाता है। इस क्रिया को हम **तापीय विघटन** (**Thermal dissociation**) कहते हैं। कुछ कार्बनिक पदार्थों के अणु तो कुछ ही डिग्री तापमान पर परमाणुओं में विभक्त हो जाते हैं। पानी जैसे द्रवों के अणु हज़ारों डिग्री तापमान पर जाकर परमाणुओं में विभक्त होते हैं। परन्तु यदि तापमान कई हज़ार डिग्री तक पहुंच जावे तो विश्व में कोई पदार्थ ऐसा न रहेगा जिसके अणु परमाणुओं में न विभक्त हो जावें। सूर्य पर ऐसी ही स्थिति है; उसके धरातल का तापमान ६०००°C तक है। कुछ नक्षत्र ऐसे भी हैं कि उन पर अभी कुछ अणुओं के अस्तित्त्व के चिह्न विद्यमान हैं।

जब तापमान अणुओं को परमाणुओं में विभक्त कर सकता है, तब क्या यह सम्भव नहीं है कि यदि तापमान को और बढ़ावें तो परमाणुओं से उनके विद्युताणु निकल भागें। वास्तव में ऐसा हो सकता है। अधिक तापमान से परमाणुओंके बाहरी विद्युताणु उनको छोड़कर एकदम भाग सकते हैं। इस क्रिया को हम **तापीय आयनीकरण** कहते हैं। इस क्रिया की गति उस समय देखिये जब तापक्रम लाखों डिग्री पर पहुँच जावे। इतना तापमान हम अपनी प्रयोगशालाओंमें नहीं बना पाये हैं, परन्तु विश्व के बहुत से नक्षत्रों का, विशेषकर हमारे सूर्य का अन्तस्तल इस तापमान से धधक रहा है। इनके अन्तस्तलों में परमाणु नहीं हैं। पदार्थ की अवस्था वहां केवल नाभि तथा विद्युताणुओं के रूप में है। विद्युताणुओं का नाभि से कोई सम्बन्ध नहीं है; वे स्वतंत्र गति से घूम रहे हैं। यदि तापमान कम हो जावे तो नाभि में उसके विद्युताणु फिर आ जावेंगे और फिर वह परमाणु बन जावेगा। नाभि को तोड़ने के लिये तो तापमान को कई करोड़ डिग्री तक जाना पड़ता है। सबसे अधिक तापमान वाले नक्षत्र में भी कोई ऐसा चिह्न नहीं प्रकट होता कि उसके अन्तस्तल में इतना तापमान होगा। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि खरबों वर्ष पहले इतना तापमान अवश्य रहा होगा। इस तापमान का हमारे ब्रह्माण्ड पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि तापमान बढ़ता ही रहा तो प्रकृति की यह सुन्दरतम तथा सरलतम रचना नष्ट हो जावेगी। न इसमें कोई व्यवस्था रहेगी और न कोई नियम। सर्वत्र अव्यवस्था का साम्राज्य होगा।

तापमान और विनाश

क्रमसंख्या	निरपेक्ष तापक्रम	प्रभाव
१.	१०^{९}	परमाणु की नाभि टूट जावेगी।
२.	१०^{५} से १०^{९} तक	परमाणु, विद्युताणु एवं नाभि में विभक्त हो जावेगा।
३.	१००० से १०,००० तक	अणु परमाणुओं में विभक्त हो जाता है।
४.	१०० से १००० तक	पानी उबलता है; अल्कोहल पिघलती है।
५.	१० से १०० तक	उद्जन पिघलती है, और गैस भी बन जाती है।

अब हम यह जानना चाहेंगे कि क्या वास्तव में प्रकृति में होनेवाली क्रियाएं हमें अव्यवस्था की ओर ले जा रही हैं? व्यवस्था के तो नियम होते हैं। क्या कोई अव्यवस्था का भी नियम है? इसका उत्तर बहुत अधिक संतोषजनक है। अव्यवस्था का नियम है। वास्तवमें पुराने विज्ञान का यही एक ऐसा स्तम्भ है जिसे न तो आइन्स्टीन और न प्लांक हिला सके।

कल्पना कीजिये कि जिस कमरे में आप बैठे हैं, उस कमरे की वायु के सारे अणु एक कोने में इकट्ठा हो जाते हैं। जहां आप बैठे हैं वहां वायु का नाम-निशान नहीं रहता; आपका दम घुट जावेगा न। आप कहेंगे कि ऐसा हो ही नहीं सकता। क्यों? क्या कोई ऐसा नियम है कि वायु के परमाणु एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो ही नहीं सकते। ऐसा तो प्रकृति में कोई नियम नहीं है। यह घटना असम्भव तो नहीं है, यदि हम एक काल्पनिक तल से कमरे को दो बराबर भागों में बांट लें। एक अणु की गति पर विचार कीजिये। वह घूम रहा है। कौन से भाग में वह पाया जावेगा? क्या किसी एक भी भाग में वह अधिक रहेगा। जब आप एक रुपये को उछालते हैं तो कौन-सा तल अधिक बार आता है? दोनों तल समान बारी से आयेंगे। इसी प्रकार वह अणु कभी कमरे के एक भाग में, कभी दूसरे में पाया जावेगा। किसी भी भाग से उसका कोई मोह नहीं है, उसे निर्मोही कहो या समस्त प्राणी वर्ग से प्रेम करने वाला कहो। इसी प्रकार किसी अणुको इन भागों से कोई पक्षपात नहीं है। ऐसी भी बात नहीं है कि यदि एक अणु इस भाग में रहेगा तो दूसरा भी उसका अनिवार्य रूपसे अनुसरण करेगा अथवा उसके प्रतिकूल आचरण करेगा। एक दूसरे से स्वतंत्र गति होती है इन अणुओं की। इस तर्क के आधार पर हम कह सकते हैं कि अणुओं

का विभाजन इन दो खंडों में समान होगा। इस कथन की वास्तव में सबसे अधिक सम्भावना है। ५० बार यदि रुपया उछाला जावे तो सबसे अधिक सम्भावना यही है कि २५ बार उसका एक तल आवे और २५ बार दूसरा। इस बात की सम्भावना बहुत कम है कि एक तल इन ५० बार में से एक बार भी न आवे। गणना से मालूम होता है कि इस घटना की सम्भावना केवल $(\frac{१}{२})^{५०}$ है। एक साधारण आकार के कमरे में अनुमानतः $१०^{२७}$ अणु होते हैं। इस बात की सम्भावना, कि सारे के सारे अणु कमरे के एक भाग में एकत्र हो जावें, केवल

$$(\frac{१}{२})\, १०^{२७} = १०^{-३} \times १०^{२६} \text{ (लगभग)}$$

है। औसतन कमरे के एक किनारे से दूसरे तक अणु एक सेकेंड में लगभग ५० चक्कर लगा लेगा। और इस हिसाब से इस घटना को घटित होने में लगभग $१०^{२९९,९९९,९९९,९९९,९९९,९९९,९९९,९९९,९९८}$ सेकेंड लगेंगे। जबकि विज्ञान के सर्वोत्तम अनुमान यह कहते हैं कि हमारे इस विश्व की कुल आयु $१०^{१८}$ सेकेंड है। इस प्रकार से यह घटना इस विश्व की आयु में तो घटने से रही।

गिलास का पानी है। जल के अणुओं की गति भी तो चारों दिशाओं में ही है। तापमान के कारण जो उसके अणुओं में एक हलचल मची है वह सब दिशाओं में एक समान है; फिर भी उसके अणु गिलास को छोड़ कर कहीं जानेवाले नहीं हैं। अब क्या यह सम्भव नहीं है कि ऊपर के आधे भाग के सारे अणु ऊपर की ओर भाग जावें। यह घटना एकदम असाध्य नहीं है। हाँ, इसकी सम्भावना बहुत कम है। वास्तव में इस घटना की सम्भावना भी उतनी ही है जितनी वायु के सारे अणुओं के कमरे के एक कोने में इकट्ठा हो जाने की।

६·४. **Entropy.** वास्तविकता तो यह है कि प्रकृति में अणुओं की यह अव्यवस्था एवं अनियमित उछलकूद और दूसरी अनियमित घटनाएं इस प्रकार घटित होती हैं कि उनकी इस क्रिया की सम्भावना अधिकतम हो जावे। हज़ारों बार रुपया उछालने पर वह इस प्रकार भूमि पर गिरेगा कि उसके दोनों तलों की आने की सम्भावना समान रहे और इसी घटना की सम्भावना अधिकतम है। और किसी भी संयोग की सम्भावना इसमें अधिक नहीं हो सकती। आखिर प्रकृति में ऐसी कम सम्भावना की घटनाएं क्यों घटें? ऐसी घटनाओं की सम्भावनाओं का मान हम देख चुके हैं कि कितना कम होता है। वास्तव में ऐसी घटनाएं प्रकृति में बहुत कम होती हैं। इन

सम्भावनाओं के लघु को Entropy कहते हैं। प्रत्येक अनियमितता तथा अव्यवस्था के साथ एक एन्ट्रापी का मान होता है। जो घटनाएं अधिक सम्भव होती हैं वे ही अधिक एन्ट्रापी की हक़दार होती हैं। इन एन्ट्रापी की भाषा में हम अनियमितता के नियम को इस प्रकार दुहरा सकते हैं कि भौतिक क्रियाओं में होनेवाले परिवर्तन इस प्रकार होते हैं कि उसकी एन्ट्रापी अधिकतम हो सकें।

अणुओं की यह अव्यवस्था या उछल.कूद ही उसके तापमान का कारण है। ऊर्जा के बहुत-से रूप होते हैं और वह अपना रूप-परिवर्तन भी आसानी से कर सकती है। तापमान के कारण अणुओं की गति-ऊर्जा को हम ताप-ऊर्जा कह सकते हैं और प्रायः कहते हैं। यांत्रिक ऊर्जा वह है जिससे बड़े-बड़े यंत्र चलते हैं। मोटर, इंजन तथा दूसरे यंत्रों को चलानेवाली ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा कहते हैं। कुछ यंत्र तो बिजली से चलते हैं; परन्तु कुछ रेल के इंजन जैसे यंत्र तो केवल ताप-ऊर्जा के कारण ही काम करते हैं। यांत्रिक-ऊर्जा वास्तव में है क्या? वह है ताप-ऊर्जा का एक विशेष दिशा में नियंत्रण अथवा अणुओं की उछलकूद पर नियंत्रण लगा देना। यह ताप-ऊर्जा यांत्रिक-ऊर्जा उत्पन्न करती है और यह यांत्रिक-ऊर्जा फिर ताप-ऊर्जा में निकल जाती है। रेल के पहियों और पटरियों में रगड़ होने के कारण सारी यांत्रिक-ऊर्जा ताप-ऊर्जा बनकर निकल जाती है। लेकिन क्या यह सम्भव नहीं कि सारी ताप-ऊर्जा यांत्रिक-ऊर्जा का रूप ले ले? काश! ऐसा हो पाता। फिर क्या था। एक बार कोयला जलाया, उससे यांत्रिक-ऊर्जा बनाई, फिर इस ऊर्जा को ताप-ऊर्जा का रूप दिया, जिससे फिर यांत्रिक-ऊर्जा का जन्म हुआ और यह क्रम शाश्वत रूप से चलता रहता। न मनुष्य को कोयलों की खान में घुसना पड़ता, न रोज भट्टी जलानी पड़ती। सुन्दरतम हो जाता यह मृत्युलोक भी। परन्तु प्रकृति को ऐसा स्वीकार नहीं है। यांत्रिक-ऊर्जा तो पूर्ण रूप से ताप-ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है, परन्तु ताप-ऊर्जा से हम पूर्ण यांत्रिक-ऊर्जा नहीं उत्पन्न कर सकते। दिन पर दिन यांत्रिक और दूसरी ऊर्जाओं का ताप-ऊर्जा में रूपान्तर हो रहा है। एन्ट्रापी का साम्राज्य विस्तृत हो रहा है। यह ताप-ऊर्जा कोयले या दूसरे किसी ऐसे रूप में तो एकत्र भी नहीं हो रही है। फिर क्या होगा तब, जब सारा कोयला समाप्त हो जावेगा, सारा पेट्रोल समाप्त हो जावेगा? यदि यह प्रश्न आज से ५० वर्ष पहिले उठता तो इसका एक ही उत्तर था 'विनाश'। परन्तु आज तो परमाणु बम ने हमें एक और ही रोशनी दिखा दी है।

अनुक्रमणिका